ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

नागकुमारचरित

उभय-भाषाकविचक्रवर्त्ती मल्लिषेणसूरि के
नागकुमारचरित का
हिन्दी-सार

लेखक -
उदयलाल काशलीवाल

सम्पादन -
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियां, भीलवाड़ा (राज०)

आद्य-प्रकाशक -
हिन्दी-जैनसाहित्यप्रसारक कार्यालय,
बम्बई

: प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

प्रकाशकीय

वीतरागी जिनेन्द्र भगवन्तों द्वारा उपदेशित जिनवाणी चार अनुयोग में निबद्ध है—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग। प्रतिपादन शैली की विविधता होने पर भी सभी अनुयोगों का एकमात्र तात्पर्य वीतरागता है और वीतरागता निज स्वभाव के अवलम्बन से उपलब्ध होती है। इसलिए चारों अनुयोगों का एकमात्र तात्पर्य अपने ध्रुव चैतन्य त्रिकाली स्वभाव का अवलम्बन करना ही है।

प्रथमानुयोग में ऐसे स्वभाव के अवलम्बन करके मुक्तिमार्ग की ओर प्रयाण करते हुए धर्मात्मा पुरुषों का जीवनचरित्र निबद्ध किया जाता है जिसमें संसार की विचित्रता, पुण्य-पाप का फल और महन्त पुरुषों की प्रवृत्ति का वर्णन करते हुए जीवों को धर्म मार्ग में लगाया जाता है। प्रस्तुत नागकुमारचरित इसी शृंखला की एक कड़ी है जिसकी रचना महाकवि मल्लिषेण ने की है। जिसका अनुवाद पण्डित उदयलाल काशलीवाल द्वारा किया गया है। जिसका प्रथम संस्करण हिन्दी जैनसाहित्य प्रसारक कार्यालय मुम्बई द्वारा ई.सन् दिसम्बर १९१३ में प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत ग्रन्थ का भाषादि की दृष्टि से सम्पादन पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। सभी साधर्मीजन इस ग्रन्थ का आद्योपान्त स्वाध्याय कर आत्महित का प्रयोजन साधें - यही भावना है।

ट्रस्टीगण,
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विले पार्ला, मुम्बई

लेखक का हृदय

संस्कृत का जैनसाहित्य-समुद्र अगाध है। उसमें एक से एक अनमोल रत्न हैं। ऋषियों ने उनके संग्रह करने में यत्परोनास्ति परिश्रम किया था। वे सब यदि आज संसार की आँखों के सामने रखे हुए होते तो उनके द्वारा उसका बड़ा उपकार होता और साथ में उन निष्काम महात्माओं की कीर्ति दिगन्त व्यापिनी होती। उनके पवित्र विचारों का सिक्का प्रत्येक मनुष्य के हृदय पर अंकित होता। पर समाज के दुर्भाग्य ने ऐसा न होने दिया।

उनमें लाखों-करोड़ों को तो जुल्मियों-धर्म और देशद्रोहियों के निर्दय लोमहर्षण-अत्याचार ने नष्ट कर दिये, हजारों वर्षों की संग्रह की हुई सम्पत्ति पापियों ने क्षणभर में नामशेष कर दी। उसके बाद भी थोड़ी बहुत सम्पत्ति को परोपकारियों ने पृथ्वी में गाड़कर बचाया और वह कुछ अंशों में अभी तक सुरक्षित हैं। पर आज हम उनके कुल को कलंकित करनेवाले, आलसी, अकर्मण्य, कृतघ्नी ऐसे पैदा हुए कि अपने बचे बचाये वैभव की भी सुरक्षा नहीं करते। उसका अलमारियों और भण्डारों में पड़े-पड़े सड़ा करना, दीमक और चूहों का खाद्य बनना हम बुरा नहीं समझते पर संसार के सामने उसे लाना पाप समझते हैं। अपनी पवित्र सम्पत्ति की दुर्दशा का प्रायश्चित्त हमारे लिए क्या होगा, यह भगवान ही जाने। हमारे लिए यह डूब मरने की बात है कि हम अपने पुरुखाओं की सम्पत्ति

को नष्ट करके उनके स्वर्गीय आत्मा को बेहद कष्ट पहुँचा रहे हैं।

हम चाहें तो अब भी सम्हल सकते हैं – अब भी अपने अनमोल रत्नों की रक्षा कर सकते हैं। हमें उदार हृदय बनकर सबके हितार्थ उन रत्नों को प्रकाशित करने लिए दृढ़ संकल्प होना चाहिए। इसी में हमारा, हमारे धर्म का और हमारे देश का भला है।

उक्त महत् उद्देश्य को लेकर हम भी आज अपना पैर आगे बढ़ाना चाहते हैं। हमें भय है कि कहीं इस कर्तव्य पथ से हम फिसल न जायें इसलिए हम उस अनन्त शक्तिशाली परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वे हमें सम्हाल रहें और प्रतिदिन हमारी शक्तियों को बल प्रदान करते रहें, जिससे हम बिना किसी विघ्नबाधा के आगे–आगे बढ़ते चले जायें।

हमने जैनसाहित्यसीरीज़ इसी उद्देश्य से निकालना आरम्भ की है। जिसका पहला ग्रन्थ इस समय पाठकों के करकमलों का भूषण है।

आगे भी इसमें जैन साहित्य के यशस्तिलक, गद्यचिन्तामणि, पुरुदेवचम्पू, धर्मशर्माभ्युदय आदि उत्कृष्ट ग्रन्थ हिन्दी भाषा में प्रकाशित हुआ करेंगे। जिससे सर्व साधारण को लाभ पहुँचेगा। इसके लिए पाठकों से हम प्रार्थना करते हैं कि वे इस सीरीज़ का प्रचारकर जैनसाहित्य का गौरव बढ़ाने की कोशिश करें।

यह मूल ग्रन्थ उभयभाषा कवि चक्रवर्ती श्रीमल्लिषेण सूरि का बनाया हुआ है। आपका संक्षिप्त परिचय आगे दिया है। इसकी कथा बड़ी सुन्दर और रसीली है, इसलिए हमने इसे प्रकाशित किया है।

सार लिखने के सम्बन्ध में हमें यह कहना है कि हमने कथा का भाव लेकर स्वतन्त्र रीति से इसे लिखा है और जहाँ कहीं जरूरत समझी है वहाँ कुछ विषय बढ़ा भी दिया है। जैसे इसमें मद्य, माँस, मधु के छोड़ने का उपदेश अथवा अणुव्रत आदि बहुत ही संक्षिप्त में लिखे थे, उन्हें हमने कुछ विस्तृत कर दिये हैं। ऐसा करने से हमारा अभिप्राय सर्व साधारण के लाभ की दृष्टि को लिए हुए हैं। पाठकों को यह अरुचिकर न होगा।

हमारे इस प्रयत्न में कुछ त्रुटि हो तो नि:संकोच भाव से पाठकों को सूचित करना चाहिए। हम उसके सुधारने का अवश्य प्रयत्न करेंगे।

अज्ञ–

उदयलाल काशलीवाल

महाकवि मल्लिषेण का परिचय

इस छोटे से ग्रन्थ के कर्त्ता का नाम मल्लिषेण है। मल्लिषेण नाम के पहले बहुत से आचार्य हो गये हैं, और उनमें से बहुत से ऐसे हैं जिन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना भी की है। हम जिन मल्लिषेण के विषय में लिखना चाहते हैं, उनसे कुछ ही वर्षों पीछे एक मल्लिषेण नामक दूसरे आचार्य हो गये हैं, जो पहले मल्लिषेण[१] की ही श्रेणी के विद्वान् थे। इस थोड़े से अन्तर के कारण अभी तक बहुत लोग दोनों को एक ही समझते थे। परन्तु अब यह भ्रम दूर हो गया है। पहले मल्लिषेण **उभयभाषाकविचक्रवर्ती** के पद से सुशोभित थे और दूसरे **मलधारिन्**[२] पद से युक्त थे।

उभयभाषाकवि चक्रवर्ती मल्लिषेण ने महापुराण की प्रशस्ति में अपना परिचय इस प्रकार दिया है:-

तीर्थे श्रीमुलगुन्दनाम्निनगरे श्रीजैनधर्मालये
स्थित्वा श्रीकविचक्रवर्त्तियतिपः श्रीमल्लिषेणाह्वयः।
संक्षेपात्प्रथमानुयोगकथनव्याख्यान्वितं श्रृण्वतां
भव्यानां दुरितापहं रचितवान्निःशेषविद्याम्बुधिः।।
वर्षैकत्रिंशताहीने सहस्रे शकभूभुजः।
सर्वजित्वत्सरे ज्येष्ठे सशुक्लेपञ्चमीदिने।।

---

१. स्याद्वादमंजरी के कर्त्ता का नाम भी मल्लिषेण ही है, परन्तु वे श्वेताम्बर सम्प्रदाय में हुए हैं।

२. इस पद का अर्थ समझ में नहीं आता और भी दो एक विद्वान् इस पद से शोभित रहे हैं, जैसे कि मलधारिश्रीराजशेखरसूरि।

अनादितत्समाप्तं तु पुराणं दुरितापहम्।
जीयादाचन्द्रतारार्कं विदग्धजनचेतसि।।
श्रीजिनसेनसूरितनुजेन कुदृष्टिमतप्रभेदिना।
गारुडमंत्रवादसकलागमलक्षणतर्कवेदिना।।
तेन महापुराणमुदितं भुवनत्रयवर्त्तिकीर्त्तिना।
प्राकृतसंस्कृतोभयकवित्वधृता कविचक्रवर्त्तिना।।

इन श्लोकों से मालूम होता है कि महाकवि मल्लिषेण संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं के महाकवि थे – कवियों के चक्रवर्ती थे, व्याकरण, न्याय, आगम, गारुड़ मन्त्रवाद आदि सब विषयों के ज्ञाता थे, बड़े-बड़े मिथ्यादृष्टियों को उन्होंने पराजित किया था और सब ओर उनकी कीर्ति फैल रही थी। शक संवत् ९६५ की ज्येष्ठ सुदी ५ को उन्होंने मूलगुंद नामक तीर्थ के जिनमन्दिर में अथवा वसतिका में महापुराण को समाप्त किया था। यह मूलगुंद नाम का ग्राम अब भी है और धारवाड़ जिले के गदग तालुका में उसकी गणना की जाती है। पहले शायद यह स्थान बहुत प्रसिद्ध रहा होगा, परन्तु अब नहीं है। उन्होंने आपको **श्रीजिनसेनसूरि** का पुत्र बतलाया है। इससे जान पड़ता है कि गृहस्थजीवन में जो इनके पिता होंगे, पीछे से उन्हीं से दीक्षा से ली होगी और मुनिजीवन में उनका नाम **जिनसेन** रखा गया होगा, जिनसेन नाम के भी कई आचार्य हो गये हैं, इससे यह पता लगाना कठिन है कि, इनके पिता कौन थे। **आदिपुराण** के कर्त्ता **भगवज्जिनसेन** का समय शक संवत् ७६५ तक का निश्चय हो चुका है और **हरिवंशपुराण** के कर्ता **जिनसेन** ने हरिवंशपुराण शक संवत् ७०५ में समाप्त किया है, सो उक्त दो जिनसेन तो मल्लिषेण के पिता हो नहीं सकते हैं,

क्योंकि इन दोनों से मल्लिषेण का समय दो सौ वर्ष पीछे है। अत: इनके पीछे होनेवाले कोई तीसरे ही जिनसेन इनके पिता होंगे।

मल्लिषेणकृत महापुराण बहुत छोटा है। केवल दो हजार श्लोकों में उसकी संक्षेपत: रचना की गई है। परन्तु ग्रन्थ बहुत सुन्दर है और उसमें अनेक विषय ऐसे आये हैं जो दूसरे ग्रन्थों में नहीं हैं। इसकी एक प्रति कोल्हापुर के भट्टारक लक्ष्मीसेनजी के मठ में प्राचीन कानड़ी लिपि में ताड़पत्रों पर लिखी हुई है। उस पर इस बात का उल्लेख नहीं है कि, वह कब लिखी गई है। श्रवणबेलगुल के **ब्रह्मसूरिशास्त्री** के भण्डार में भी शायद उसकी एक प्रति है।

उभयभाषाकविचक्रवर्ती ने इसमें सन्देह नहीं कि, अनेक ग्रन्थों की रचना की होगी, परन्तु अभी तक उनके सिर्फ तीन ही ग्रन्थों का पता लगा है, एक महापुराण जिसका ऊपर उल्लेख हो चुका है, दूसरा **नागकुमारचरित** और तीसरा **सज्जनचित्तवल्लभ** ये तीनों ग्रन्थ संस्कृत में हैं, प्राकृत में अभी तक आपका कोई भी ग्रन्थ प्राप्त नहीं हुआ है, परन्तु होगा अवश्य। क्योंकि आपने अपने को संस्कृत के समान प्राकृत का भी कवि कहा है। प्रवचनसार टीका, पंचास्तिकाय टीका, ज्वालिनीकल्प, पद्मावतीकल्प, वज्रपंचरविधान, ब्रह्मविद्या और आदिपुराण ये ग्रन्थ भी मल्लिषेणाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हैं, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि, उनमें से उभयभाषाकविचक्रवर्ती के रचे हुए कौन से हैं, और दूसरों के कौनसे।

यह [१]**नागकुमारचरित** छोटासा पंचसर्गात्मक ग्रन्थ है, और

---

१. बाहूबलि नाम के कवि ने इस चरित का अनुवाद कड़ानी भाषा में शक संवत् १५०७ में किया है।

५०७ श्लोकों में पूर्ण हो गया है। यद्यपि इस ग्रन्थ में कर्त्ता ने अपनी प्रशस्ति नहीं दी है और प्रारम्भ में एक जगह अपने मल्लिषेण नाम के सिवाय कुछ भी नहीं लिखा है, तो भी प्रत्येक सर्ग के अन्त में **इत्युभयभाषाकविचक्रवर्त्तिश्रीमल्लिषेणसूरि-विरचितायां श्रीनागकुमारपञ्चमीकथायां** इत्यादि लिखा हुआ है, जिससे जान पड़ता है कि महापुराण के कर्त्ता मल्लिषेण ने ही इसकी रचना की है। इस काव्य के प्रारम्भ में लिखा है कि -

कविभिर्जयदेवाद्यैर्गद्यैर्पद्यैर्विनिर्मितम्।
यत्तदेवास्ति चेदत्र विषमं मन्दमेधसाम्।।
प्रसिद्धैः संस्कृतैर्वाक्यैर्विद्वज्जनमनोहरम्।
तन्मया पद्यबन्धेन मल्लिषेणेन रच्यते।।

इससे मालूम होता है कि, मल्लिषेण के पहले जयदेव नामक किसी कवि का बनाया हुआ कोई नागकुमारकाव्य था, जो गद्यपद्यमय (चम्पू) था। परन्तु वह कठिन था, इसलिए मल्लिषेण ने इसे सरल और प्रसिद्ध संस्कृत में बनाना उचित समझा। यह चरित्र बहुत सरल है और साधारण संस्कृत पढ़े हुए इसे सहज ही समझ सकते हैं।

दूसरा **सज्जनचित्तवल्लभ** केवल २५ श्लोकों का छोटा सा काव्य है। इसमें मुनियों को बहुत ही प्रभावशाली शब्दों में उपदेश किया है कि तुम अपने चरित्र को निर्मल रखो, ग्राम के समीप मत रहो, स्त्रियों से सम्बन्ध मत रखो, परिग्रह धनादि की आकांक्षा मत करो, भिक्षा में जो लूखा-सूखा भोजन मिले, उससे सन्तोषपूर्वक पेट भर लो, और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके अपने यति नाम को सार्थक करो, इस छोटे से ग्रन्थ के पाठ करने से अनुमान होता है कि श्री मल्लिषेणाचार्य को अपने समय के मुनियों को शिथिलाचार

में प्रवृत्त देखकर बड़ी चोट लगी थी। उनके हृदय की वह चोट सज्जनचित्तवल्लभ के कई श्लोकों से स्पष्ट व्यक्त होती है। इसमें सन्देह नहीं कि वे बड़े दृढ़व्रती और विरक्त मुनि होंगे, परन्तु उस समय के सब मुनि ऐसे नहीं होंगे। उनमें अवश्य ही शिथिलाचार की प्रवृत्ति होने लगी होगी। भट्टारकों की उत्पत्ति भले ही बहुत पीछे हुई हो, परन्तु उनका बीज उनसे कई सौ वर्ष पहले हमारे मुनिसमाज में पड़ चुका होगा।

दूसरे मल्लिषेण आचार्य जिनकी कि **मलधारिन्** पदवी थी और जिनका उल्लेख इस लेख के प्रारम्भ में किया गया है, शक संवत् १०५० की फाल्गुन कृष्ण तृतीया को श्वेतसरोवर में (श्रवणबेलगुल में) समाधिस्थ हुए थे, ऐसा मल्लिषेणप्रशस्ति[१] से पड़ता है जो कि 'इंस्क्रिप्शन्स एट् श्रवणबेलगोला' नामक अंग्रेजी पुस्तक में प्रकाशित हो चुकी है। वे अजितसेन नामक आचार्य के शिष्य थे और बड़े भारी विद्वान् योगी और जितेन्द्रिय थे।

(जनहितैषी अंक ७-८, भाग ७)

१. यह बड़ी भारी प्रशस्ति श्रवणबेलगोला के पार्श्वनाथबस्ती नाम के मन्दिर में कई शिलाओं पर उकीरी हुई अब भी मौजूद है।

।। ॐ ।।

नमः सिद्धेभ्यः

नागकुमारचरित

पहला परिच्छेद

ग्रन्थ की आदि में–सब जीवों के कल्याण करनेवाले नेमिनाथ भगवान को नमस्कार करके नागकुमार का पवित्र चरित लिखता हूँ। वह इसलिए कि इसके श्रवण पठन से पापकर्म का नाश होता है और पुण्य संचित होता है।

जयदेव आदि महा–कवियों ने नागकुमार का चरित लिखा है, परन्तु उसकी गद्यपद्यमय भाषा कठिन होने से मैं सरल, सुबोध और मुहाविरे में आनेवाले छोटे–छोटे वाक्यों में इसे लिखूँगा। मुझे जहाँ तक विश्वास है, इससे बुद्धिमानों का मनोरंजन भी होगा।

जहाँ ऐरावत हाथी मौजूद हों, वहाँ और साधारण हाथियों की कुछ गिनती नहीं होती, वे थोड़े से अपने बल वीर्य पराक्रम के द्वारा ही प्रसन्न रहते हैं। पर बात यह है कि जिस आकाश में गरुड़ उड़ता है, उसमें मोर भी अपनी शक्ति के अनुसार उड़ा करते हैं। ठीक उसी तरह जिस मार्ग का बड़े–बड़े आचार्यों ने अनुसरण किया है, उसका मैं भी अपनी शक्ति के अनुसार अनुसरण करूँगा। इतने कहने का सार यह कि जिस कार्य का मैंने आरम्भ किया है, उसे अब मैं संक्षिप्त में लिखता हूँ।

***

जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भारतवर्ष में मगध नाम का देश है। मगध की राजधानी राजगृही है। वह अच्छी सम्पत्तिशालिनी है। उसके राजा **श्रेणिक** हैं। वे सारे देश का पालन अच्छी तरह करते हैं। उनकी प्रियतमा का नाम **चेलिनी** है। उसके हृदय में जिन भगवान की अत्यन्त भक्ति है। इसलिए कवि ने उसे भगवान के चरण कमलों की भ्रमरी लिखा है। रोहिणी जैसे लोगों को आनन्द देती है, वैसे उसे देखकर सबको आनन्द होता है। वह सीता की तरह पतिव्रता है। इन्द्र जैसे अपनी प्रियतमा शची के साथ सुख भोगता है, उसी तरह श्रेणिक महारानी चेलिनी के साथ सुखपूर्वक दिन बिताते हैं।

एक दिन श्रेणिक राज्य सिंहासन पर बैठे हुए थे कि इतने में उनके किसी कर्मचारी ने आकर निवेदन किया कि महाराज! श्री वीरभगवान विपुलाचर पर पधारे हैं। यह समाचार सुनकर श्रेणिक बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने भगवान के समाचार लानेवाले को अपने शरीर के सब भूषण वस्त्र इनाम दे दिये और सिंहासन से सात पैंड आगे आकर भगवान की परोक्ष वन्दना की।

इसके बाद यह आनन्द सूचना शहर में दिलवाकर अपनी प्रियतमा के साथ श्रेणिक, भगवान की पूजन करने को गये। विपुलाचल पर पहुँचकर श्रेणिक के भगवान को समवसरण में विराजे देखे, उन्होंने उनकी तीन प्रदक्षिणा की, नमस्कार किया और फिर अनेक तरह के अच्छे-अच्छे गन्धपुष्पादि पवित्र द्रव्यों से भगवान का पूजन किया। पश्चात् गौतम भगवान को वन्दना

करके अपने योग्य स्थान में वे बैठ गये और धर्मोपदेश सुनने लगे। वहाँ उन्होंने गौतमस्वामी से पूछा कि विभो! मुझे पञ्चमी व्रत की कथा सुनने की इच्छा है, आप कहें तो बड़ी दया हो। मन:पर्यय –ज्ञान के धारक गौतम गणधर ने श्रेणिक को इस तरह सुनाना आरम्भ किया–

***

हे श्रेणिक! विद्वज्जनों पूर्ण मगधदेश बड़ा सुन्दर देश है। वह गन्ने आदि पदार्थों के मनोहर खेतों से युक्त है। उसके चारों ओर अच्छे–अच्छे बगीचे हैं। उन बगीचों में सब प्रकार के फल फूल बड़ी शोभा दे रहे हैं। देश की श्री आस–पास के छोटे–छोटे गाँव, खेत, पत्तन और मटंब आदि से और भी बढ़ गई है।

इसी मगधदेश में कनकपुर नाम का एक सुन्दर नगर है। वह कुँए सरोवर और बगीचे आदि से शोभित है। सरोवर की शोभा फूले हुए कमलों से बड़ी मनोहर जान पड़ती है। कनकपुर देशभर में अच्छा प्रसिद्ध नगर है। उसमें बड़े–बड़े धनवान, विलासी और सुखी लोग रहते हैं। इन सब सुख–सामग्री, सौन्दर्य और सजधज से कनकपुर को स्वर्ग की उपमा दी जा सकती है।

कनकपुर के राजा का नाम जयंधर था। उसने अपने शत्रुओं को जीत लिए थे। वह प्रभुत्व, मन्त्र और कोष इन तीनों प्रकार की शक्तियों तथा मन्त्री, मित्र, खजाना, देश, दुर्ग, बल आदि सात अंगों से युक्त था। काम, क्रोध, मान, लोभ, हर्ष तथा गर्व ये छह राजाओं के अन्तरंग शत्रु हैं। जयंधर ने इन्हें भी जीत लिये थे।

जयंधर परस्त्रियों के लिए अन्धा था, खोटे कामों के करने में आलसी था, दूसरों की निन्दा करने में गूँगा था और जीवों की हिंसा करने में पंगु-अपाहिज था। अर्थात् जयंधर न कभी परस्त्रियों के साथ रमण करता था, न कभी बुरे काम करता था, न दूसरों की निन्दा करता था और न कभी जीवों की हिंसा करता था। उसकी प्रियतमा का नाम विशाललोचना था। उसकी चाल को देखकर हंस तक शर्मा जाते थे। उसकी वाणी बड़ी सीधी और मधुर थी।

उनके श्रीधर नाम का सुन्दर पुत्र था। वह सब कलाओं का जाननेवाला था, सत्यवादी था, निर्लोभी था। उसमें और भी अच्छे अच्छे गुण थे।

जयंधर का एक मन्त्री था। उसका नाम था नयंधर। वह नीतिशास्त्र का अच्छा जाननेवाला था। अपने स्वामी का आदर्श भक्त था। सबके साथ प्रिय-भाषण करता था। कहने का अभिप्राय यह कि एक राज मन्त्री में जितने गुण होने चाहिए, उससे वे सब थे।

एक दिन की बात है कि जयंधर अपने राजमहल में बैठा हुआ था, इतने में एक सेठ रत्नजड़ित एक सुन्दर चित्रपट लेकर उसके पास आया और उसे अभिवादन कर उसके सामने वह बहुमूल्य चित्रपट उसने रख दिया। राजा ने उसे पान सुपारी देकर पूछा- तुम इतने दिन कहाँ रहे? उत्तर में वासवसेन ने कहा - महाराज! मैं इतने दिनों से लाट देश में था। अभी वहीं से चला आ रहा हूँ। जयंधर उससे कुछ और भी पूछना चाहता था कि उसकी दृष्टि

उस चित्रपट पर जा पड़ी, जो उसकी आँखों के सामने रखा हुआ था। उसने देखते ही चित्रपट को अपने हाथ में उठा लिया। उसमें एक सुन्दरी की भुवनमोहिनी प्रतिमा अंकित थी। उसे देखते ही राजा उस पर मुग्ध हो गया। उसकी हालत एक लिखे हुए चित्र की तरह हो गई। उस समय वहाँ जितने राज कर्मचारी आदि बैठे हुए थे, राजा ने उन सबको अपने-अपने स्थान पर जाने को कह दिया। जब वे सब चले गये तब राजा ने बड़े आदर के साथ वासवसेन का हाथ पकड़कर एकान्त में पूछा कि - कहो, तो यह चित्र किसका है? क्या यह नागकुमारी की मूर्ति है? या गन्धर्वबाला की? या किसी विद्याधर-कन्या की?

वासवसेन बोला - महाराज! सुराष्ट्र देश में गिरिनगर नाम का एक सुन्दर शहर है। उसके राजा का नाम है श्रीवर्मा और उसकी प्राणप्यारी का नाम श्रीमती है। उसके एक पुत्र और पुत्री है। उनके नाम क्रम से हरिवर्मा और पृथ्वीदेवी है। पृथ्वीदेवी हरिवर्मा से छोटी है। उसी का यह चित्रपट लिखकर मैं आपके पास लाया हूँ।

यह सुनकर जयंधर ने वासवसेन को उसके साथ अपना विवाह सम्बन्ध ठीक करने के लिए भेजा। उसके साथ अपने विश्वासपात्र और भी बहुत से नौकरों को भेंट देकर भेजे। वे सब श्रीवर्मा के पास पहुँचे। जयंधर ने श्रीवर्मा के लिए जो उपहार भेजा था, उसे उन्होंने उसके सामने समर्पण कर दिया। भेंट स्वीकार कर श्रीवर्मा ने उन्हें उचित परितोषिक दिया और पूछा कि कहो इतनी दूर से किसलिए यहाँ आये हो? जो कुछ कारण हो उसे कहो। यदि वह मेरे करनेयोग्य होगा तो मैं अवश्य उसे पूरा करूँगा।

यह सुनकर वासवसेन बोला–महाराज! कनकपुर के महाराज जयंधर आपकी राजकुमारी को अपनी प्रियतमा बनाना चाहते हैं। वे अच्छे सुरूपवान तथा विद्वान् हैं। उन्होंने हमें इस सम्बन्ध के ठीक करने को भेजा है।

श्रीवर्मा ने उत्तर में कहा सोने और मणि का यह संयोग मुझे स्वीकार है। भला कौन ऐसा अभागा है जो ऐसे उत्तम सम्बन्ध को स्वीकार न करेगा।

श्रीवर्मा ने उसी समय ज्योतिषियों को बुलवाकर मुहूर्त दिखवाया और अपने जातीय रिवाज के अनुसार उनके साथ पालखी भेज दी। उसके साथ और बहुत से अपने विश्वस्त पुरुषों को भी उसने भेजा। जब वे जयंधर के पास पहुँचे, तब उनका उसने भी अच्छा आदर सम्मान कर पालखी के साथ उन्हें वापिस भेज दिये। साथ में वासवसेन को भी भेजा। श्रीवर्मा उनका आना सुनकर उनके सम्मुख गया और बड़े उत्सव के साथ पालखी में राजकुमारी को बैठाकर उसे उसने खूब रत्न, धन, भूषण, वसन, ग्राम आदि दिये और इसके बाद बोला – पुत्री! तू महाराज जयंधर की प्रधान प्रिया हो, पुत्रवती हो, महाराज की अनुगामिनी हो, इस प्रकार माता–पिता ने शुभाशीर्वाद देकर उसे विदा किया। उसके साथ–साथ कुछ दूर तक वे स्वयं भी गये।

जयंधर राजकुमारी का आगमन सुनकर बहुत खुश हुआ। राजकुमारी के प्रवेशोत्सव करने के लिए सारे शहर में उसने यह आज्ञा प्रचारित कर दी कि प्रत्येक घर–घर में उत्सव मनाया जाये और ध्वजा कलशादि से ये अच्छे सजाये जायें। उधर स्वयं जयंधर

राजकुमारी को लिवाने के लिए बड़े उत्सव के साथ उसके सामने गया और उसे बड़े आदरसत्कार से लाकर एक अच्छे महल में ठहरायी। फिर अच्छा दिन देखकर विधिविधान से उसके साथ उसने विवाह कर लिया। पृथ्वीदेवी के अतिरिक्त जयंधर की और भी बहुत स्त्रियाँ थीं। जयंधर की इच्छा पूरी हुई। वह सुख से समय बिताने लगा।

एक दिन माली ने आकर जयंधर से प्रार्थना की कि महाराज! बसन्तऋतु का आगमन हो गया। वन, उपवन में वृक्ष-लताएँ फल फूलने लगीं है। मुझे आज्ञा कीजिए आप कब उस स्थान को सुशोभित करेंगे? जिससे मैं सब तरह की तैयारी कर रखूँ। जयंधर ने अपना आने का समय बतलाकर उसे भेज दिया। इधर आप अपनी प्रियतमा के साथ वन-विहार के लिए रवाना हुआ। उसके पीछे ही जयंधर की प्रधान रानी विशाललोचना हाथी पर चढ़कर अपनी प्रिय सखी सहेलियों को साथ लेकर चली। उस समय पृथ्वीदेवी भी अपनी सोने की पालखी में बैठकर हाथी पर चढ़कर बड़े बाजे-गाजे के साथ वन-विहार के लिए जा रही थी। उसकी पालखी को दूर से देखकर विशाललोचना ने पूछा कि वह पालखी किसकी है? उत्तर में एक सखी ने कहा कि तुम नहीं जानती, वह महाराज की अतिशय प्यारी और तुम्हारी भगिनी है। वह बड़ी सुन्दरी है। बहुत दिन हुए जब उसे मैंने देखी थी। आज वन विहार के बहाने से उसकी रूप मधुरिमा का मुझे फिर भी दर्शन होगा।

इधर जब पृथ्वीदेवी ने अपने हाथी की गति रुकी हुई देखी,

तब पूछा कि रास्ते में किसने हाथी रोक दिया है? उत्तर में किसी परिचारिका ने कहा कि देवी! महाराज की प्रधान रानी की सवारी आगे खड़ी हुई है। जान पड़ता है आपका आना जानकर वे खड़ी रह गई हैं। पृथ्वीदेवी ने सोचा कि वे मुझसे अपना विनय करवाना चाहती हैं। वह तो इतना विचार ही रही थी कि विशाललोचना का एक साथ मिजाज बिगड़ गया। वह क्रोधित होकर बोली कि इसे तीन दिन तो महाराज की कृपा पात्री बने हुए और अभी से इतना अभिमान जो मेरा विनय तक नहीं करती? तब देखूँगी इसके अभिमान को जब इसके पुत्र होगा। यह कहती हुई वह वन को चली गई।

बिना कारण के इस प्रकार क्रोधित होकर विशालनेत्रा के चले जाने पर बेचारी पृथ्वीदेवी को बड़ा रंज हुआ। वह अपने भाग्य को दोष देती हुई बोली–सच है सौत की ईर्ष्या बड़ी बुरी होती है। भले ही उसका कितना ही आदर सम्मान करो, परन्तु वह अपने स्वभाव को नहीं छोड़ती। यह तो मैं आँखों से देख चुकी हूँ कि मैं महारानी को कितनी चाहती थी, उनका हृदय में कितना आदर करती थी, तब भी वे मुझसे बिना कारण के नाराज होकर चली गईं। विशाललोचना के इस तरह चले जाने से पृथ्वीदेवी बड़ी दु:खी हुई। उस दु:ख के मारे उसे वन में जाना भी अच्छा न लगा। वह अपना चित्त शान्त करने के लिए वन में न जाकर सीधी जिनमन्दिर में चली गई। वहाँ उसने भगवान का पूजन किया और पिहिताश्रव मुनि को नमस्कार कर उनसे उसने पूछा कि भगवन्! मुझे पवित्र धर्म का उपदेश कीजिये, जो जन्म, जरा और मृत्यु

के अपार दु:ख का नाश करनेवाला, पाप का छेदन करनेवाला और सुख का कारण है।

मुनिराज ने यों कहना आरम्भ किया–

हे भव्य! धर्म के दो भेद हैं। यतिधर्म और गृहस्थधर्म। इनमें यतिधर्म उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन और उत्तम ब्रह्मचर्य आदि दश धर्मरूप है। पुत्री! इन क्षमादि के साथ जो उत्तम शब्द लगा है, वह सम्यग्दर्शन की अनिवार्यता का सूचक है। तात्पर्य है कि सम्यग्दर्शनपूर्वक होनेवाली चारित्र की निर्मल परिणति ही वास्तव में धर्म है और कारणों के मिलने पर भी चित्त में किसी तरह का विकार न हो। जैसे कल्पना करो कि एक मुनि को निर्बल पुरुष बहुत कुछ कष्ट पहुँचा रहा है; वे उसका प्रतिकार भी कर सकते हैं, परन्तु आत्मा का स्वभाव अपने में स्थिर रहने का है। इसलिए वे किसी पर राग–द्वेष न करके शान्ति के साथ दूसरोंकृत उपद्रव सह लेते हैं। क्योंकि राग–द्वेष से नवीन कर्मों का बन्ध होता है और उससे संसार में भ्रमण करना पड़ता है।

गृहस्थधर्म के दान, पूजन, शील और प्रौषध ऐसे चार भेद हैं। इनमें पहला दान है, इसके आचार्यों ने चार भेद किए हैं।

दान का विशेष आगे लिखा है।

पुत्री! एक बात और इसमें समझने की है। देख, दान जब दिया जाये, तब यह बात अच्छी तरह जान लेनी चाहिए कि जिसे दान दिया जाता है, वह पात्र है या नहीं। क्योंकि दान के लेनेवाले

भी दो हैं–पात्र और अपात्र। इनमें पात्र के तीन भेद हैं – उत्तम पात्र, मध्यम पात्र और जघन्य पात्र। उत्तम पात्र वह कहलाता है, जो निरन्तर अपना समय स्वाध्याय व ध्यान में व्यतीत करता हो, पञ्च महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुणों का पालक हो और जिसमें क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि न हों। मध्यमपात्र उसे कहते हैं, जो स्वस्त्री–सन्तोषव्रत का धारक हो, पञ्चाणुव्रत का पालन करनेवाला हो, सम्यग्दृष्टि हो, और गुरु का भक्त हो। जघन्यपात्र वह है जो व्रतरहित होकर भी सम्यक्त्वी और जिन धर्म पर पूर्ण श्रद्धा रखनेवाला हो।

अपात्र वह कहा जाता है–जो सम्यक्त्वी न होकर देव, गुरु, धर्म की निन्दा करनेवाला हो, ऐसे अपात्रों को दान देने से कुछ लाभ न होकर उल्टा हनि होती है। पुत्री! देख, जैसे ऊसर भूमि में बीज बोने से कुछ लाभ नहीं होता, वैसे अपात्रों में दिया हुआ अन्न निष्फल जाता है। जैसे एक ही कुँए का जल नीम और गन्ने में पहुँचता है, पर उसका उपयोग भिन्न–भिन्न रूप में होता है– एक में कटुक और एक में मधुर। ठीक इसी तरह पात्र और अपात्रों में दिये हुए दान की गति होती है। जैसे पवित्र पात्र में घी दूध आदि पदार्थ नहीं बिगड़ते हैं, परन्तु वे ही किसी खराब पात्र में यदि रख दिए जाएँ तो बिगड़ जाते हैं, वैसे ही अपात्र में दिया हुआ दान नष्ट होता है। जैसे एक ही कुँए का पानी गाय पीती है और सर्प भी, परन्तु गाय का पिया हुआ तो वह दूधरूप में परिणत होता है और सर्प का पिया हुआ विषरूप में। वैसे ही पात्र और अपात्रों में दिए हुए दान का परिणमन होता है। जैसे बड़ का बीज छोटा

होता है परन्तु उसे अच्छे स्थान में बोने से बहुत बड़े वृक्ष के रूप में उसका परिणमन होता है, वैसे ही सुपात्रों को दिया हुआ थोड़ासा दान भी बहुत फल का देनेवाला होता है।

दान-प्रतिग्रह, उच्चस्थान, पादप्रक्षालन, पूजन, नमस्कार, मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि और अन्नशुद्धि, इन नवधाभक्ति-पूर्वक देना चाहिए। हाँ, एक बात और भी ध्यान में रखनी चाहिए, वह यह कि उस समय दाता में नीचे लिखे हुए सात गुणों का होना आवश्यक है।

(१) श्रद्धा – मेरा आज बड़ा ही सौभाग्य का उदय है, जो मुझे ऐसे पवित्र पात्र को दान देने का समय मिला। मैं आज बड़ा ही भाग्यवान हुआ।

(२) भक्ति – पात्र के समीप रहकर उसके चरणों की सेवा करना।

(३) अलोभीपना – दान देते समय यह ख्याल कभी ध्यान में न रखना चाहिए कि पात्र से मेरा कुछ मतलब सधेगा, इसलिए मैं इसे दान देता हूँ।

(४) दयालुता – किसी कार्य के लिए घर में इधर-उधर जाना हो तो बहुत सावधानी से देखकर चलना।

(५) शक्ति – यह बहुत खानेवाला है, कहीं सब आहार न कर जाये। ऐसी अशक्ति न दिखलाना।

(६) क्षमता – दान के समय स्त्री-पुत्रादि द्वारा यदि कुछ अपराध भी बन पड़े तो भी उन पर कुछ क्रोध न करना।

(७) विज्ञता – पात्र या अपात्र आ जाये तो उनके गुण-दोषों का ठीक-ठीक जान लेना।

पुत्री! पात्र दान का फल ऋषियों ने स्वर्गसुख की प्राप्ति होना बतलाया है। जो स्वर्ग में जाते हैं, वे वहाँ स्वर्गकन्याओं के साथ निरन्तर सुख भोगा करते हैं। उन्हें रोग, शोक, आदि किसी प्रकार का दु:ख नहीं होता। वे मृत्युपर्यन्त निरोग रहते हैं। सत्पात्रों को दान देने से न केवल सम्यग्दृष्टि ही सुखी होते हैं, किन्तु मिथ्यादृष्टि भी भक्तिपूर्वक दान देने से भोगभूमि में उत्पन्न होता है। परन्तु अपात्रदान तो सदा बुरा है। उसका फल कुगति होता है।

पुत्री! दान के सम्बन्ध में इतना और ध्यान में रखना चाहिए कि बहुत से लोग सुवर्ण, गाय, कन्या आदि का दान देना अच्छा बतलाते हैं, परन्तु बुद्धिमानों को उक्त वस्तुएँ दान न करनी चाहिए। क्योंकि इनका देना लोगों को दु:ख का कारण है। सुवर्ण प्राप्त होने से उसके रक्षा करने की पात्र को चिन्ता हो जाती है, पृथ्वीदान के निमित्त से उसमें खेती आदि करने से जीवों की हिंसा होती है, गाय दान से उसके बाँधने, मारने आदि में उसे कष्ट पहुँचता है और कन्यादान से राग उत्पन्न होता है, राग से कर्मबन्ध होता है और कर्मबन्ध से अनन्त संसार की वृद्धि होता है। इसलिए ये सभी दान दु:ख के कारण होने से देने योग्य नहीं है। दूसरे यह भी बात है कि इन सुवर्ण आदि के दान से कभी तृप्ति नहीं होती है। जैसे ईंधन से अग्नि की और नदियों से समुद्र की। इसलिए भी ये देनेयोग्य नहीं।

पुत्री! सब दानों में अन्नदान बड़ा उत्तम है। क्योंकि उससे शरीर

का सन्ताप नष्ट होता है और वह जीवन बनाये रखता है। देख, जो मनुष्य अच्छी तरह आहार लेता है, उसके सामने फिर स्वर्गीय अन्न भी क्यों न आये, उसमें उसकी कभी इच्छा तक नहीं होती।

पुत्री! यदि तू दान देने की इच्छा करती है तो तुझे अभयदान भी देना चाहिए। क्योंकि इससे सबको बड़ा आनन्द होता है। आचार्यों ने इसे संसार का नाश करनेवाला बतलाया है। जो लोग मरने से डरते हैं, उनके प्राणों की इसके द्वारा रक्षा होती है। वह निर्भय हो जाता है और निर्भय होने पर वह धर्मसाधन अच्छी तरह करने लगता है। इसलिए फिर वह कुगति में भी नहीं जाता।

जो लोग रोगी होते हैं, उनका शरीर बिगड़ जाता है और शरीर के बिगड़ जाने पर फिर वे तपश्चर्या नहीं कर सकते और तप के अभाव में मोक्षसुख प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए रोगी पात्रों के लिए औषधदान देना चाहिए। इस दान के फल से दाता निरोग और रूपवान होता है।

पुत्री! **ज्ञानदान** इसी को विद्यादान भी कहते हैं। देख, सबसे बड़ा इस दान का माहात्म्य है। क्योंकि जो अज्ञानी हैं, जो पवित्र धर्ममार्ग से च्युत होकर संसार में भटक रहे हैं, ऐसे पुरुषों के हित के लिए उन्हें ज्ञानदान देकर उनका भला करना बड़ा ही पुण्य का काम है। इसके लिए शहरों और गाँवों में पाठशालाएँ खुलवानी चाहिए और जो पहले से हैं, उनकी सहायता करनी चाहिए। जिनके पास पढ़ने को पुस्तकादि न हो, उन्हें पुस्तक वगैरह देना चाहिए। ज्ञानदान के फल से केवलज्ञानी होकर मोक्ष में जाता है।

पूजन – जिन भगवान की प्रतिमाएँ बनवाकर जो भव्यपुरुष उनका अभिषेक करते हैं और प्रतिदिन अष्ट द्रव्यों से उनकी पूजन करते हैं, वे स्वर्ग में जाकर देवों से पूज्य होते हैं।

शील – शील उसे कहते हैं जिसमें अपने उत्तम व्रतों की रक्षा की जाये। शील का पालन करने से सुगति प्राप्त होती है, दुर्गति नष्ट होती है, शील कीर्ति के प्राप्त करने का स्थान है, शील-शरीर का प्रधान भूषण है, शीलवान् पुरुष का सब सत्कार करते हैं। वह सबमें श्रेष्ठ माना जाता है।

प्रौषध – पुण्य प्राप्ति के लिए देशव्रती को अष्टमी चतुर्दशी आदि पर्व तिथियों में उपवास करना चाहिए। उपवास करने से पूर्व के पापकर्म सब नष्ट हो जाते हैं और परम्परा अक्षयपद-मोक्ष की-प्राप्ति होती है। परन्तु उपवास मन-वचन-काय की शुद्धि से किया जाना चाहिए। जैसा कि ऋषियों ने उसके करने का उपदेश दिया है।

पिहिताश्रवमुनि के उक्त प्रकार जो धर्मोपदेश दिया उसे पृथ्वीदेवी ने बड़ी रुचि के साथ सुना। धर्मोपदेश सुनने से उसे बड़ा वैराग्य हुआ। उसने मुनिराज से दीक्षा लेने की प्रार्थना की। परन्तु मुनि बोले कि अभी तेरे पुत्र होगा, इसलिए तुझे दीक्षा लेना उचित नहीं। मुनि के वचनों से उसे बड़ा सन्तोष हुआ। वह उन्हें नमस्कार कर अपने महल को चली गई और वहाँ आनन्द से रहने लगी।

***

दूसरा परिच्छेद

जयंधर वनविहार करके अकेला राजमहल लौट आया। जब पृथ्वीदेवी आई, तब उससे जयंधर ने वनविहार के लिए न आने का कारण पूछा। वह बोली कि महाराज! मैं जिनमन्दिर चली गई थी। वहाँ मुनिराज धर्म का पवित्र उपदेश दे रहे थे। मैं भी उसे सुनने के लिए बैठ गई थी; इसलिए मैं न आ सकी। रानी ने वह उपदेश भी राजा को सुनाया, जिसे वह सुनकर आई थी।

रानी का समय सुखपूर्वक व्यतीत हुआ। एक दिन वह अपने महल में सोई थी। उसने उस समय दो स्वप्न देखे। एक में तो उसने एक सुन्दर बैल को अपने घर में घुसते देखा और दूसरे में उदित होते हुए बालसूर्य को देखा।

प्रात:काल हुआ। बाजों की सुन्दर और मधुर ध्वनि रानी के कानों में सुनाई पड़ी। वह उठी और नित्यक्रिया करके महाराज के पास पहुँची। महाराज से उसने रात में देखे हुए स्वप्नों का हाल कहा। उत्तर में जयंधर ने कहा कि प्रिये! अपन जिनमन्दिर चलें, वहाँ मुनिराज हैं, उन्हीं से स्वप्न का फल पूछेंगे। ऐसा कहकर वह रानी के साथ जिनमन्दिर गया। वहाँ भगवान की वन्दना स्तुति करके वह मुनि के पास पहुँचा और नमस्कार कर उसने उन्हें स्वप्न कह सुनाये। मुनि ने उनका फल कहा कि जो स्वप्न में बेल देखा है, उससे सूचित होता है कि तुम्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी और सूर्य का देखना प्रगट करता है कि वह नियम से केवलज्ञानी होगा।

राजा को पुत्र की बात सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई। उसने मुनि से फिर पूछा कि भगवन्! मैं यह कैसे जान सकूंगा कि मेरा पुत्र ऐसा तेजस्वी होगा। उत्तर में मुनि ने कहा कि देखो, तुम्हारे बगीचे में एक सिद्धकूट जिनालय है। उसमें देवता लोग सदा पूजनादि किया करते हैं। उसका बाहिर का दरवाजा बहुत समय से बन्द पड़ा है। वह किसी से नहीं खुलता। उसे खोलने के लिए तुम्हारे पुत्र की चरणरूपी कूंची (ताली) ही समर्थ होगी। इसके अतिरिक्त और भी कई बातें हैं जो तुम्हारे पुत्र को पराक्रमी सिद्ध कर सकेंगी।

जैसे कि उसी जिनालय के पास एक बावड़ी है। उसमें बहुत से सर्प रहते हैं। तुम्हारा पुत्र खेलता-खेलता उसमें गिर पड़ेगा, वहाँ उसे सर्प न काटकर उसकी रक्षा करेंगे। वह एक नीलगिरी नाम के उन्मत्त हाथी को और एक दुष्ट घोड़े को भी अपने पराक्रम के जोर से वश करेगा। इत्यादि बहुत से चिह्नों से तुम अपने पुत्र का परिचय पा सकोगे। मुनि के वचन सुनकर राजा को बड़ा सन्तोष हुआ। वह उन्हें नमस्कार कर जिनमन्दिर में आया और भगवान की स्तुति करके राजमहल लौट आया।

कुछ दिनों के बाद मृगलोचनी पृथ्वीदेवी के गर्भ रहा। उसे दोहद उत्पन्न होने लगे। उसकी इच्छा मिट्टी के खाने की हुई। इसके बाद ही उस पर नफरत आकर जैसे उल्टी होने का सा उसे भान हुआ। इससे जान पड़ता है कि उसका पुत्र पृथ्वी का अधिपति और शुद्ध सम्यग्दृष्टि होगा। उसके त्रिवली के भंग से जान पड़ता है कि वह इसी भव में जन्म, मरण और जरा का नाश करेगा- अर्थात् मोक्ष जायेगा।

कुछ दिनों के बाद पुत्र हुआ। राजा ने पुत्रजन्म की प्रसन्नता में बहुत उत्सव कराया और अनाथ, अपाहिज, गरीबों को दान दिया, बन्धु लोगों को बहुत सम्मानित किया।

बालक का नाम संस्करण किया गया। प्रतापंधर उसका नाम रखा गया। वह दिनों दिन सुदी द्वितीया के चन्द्र की तरह बढ़ने लगा।

एक दिन की बात है कि प्रतापंधर की धाय उसे खिलाने के लिए बगीचे में ले गई। वहाँ जिस मन्दिर का द्वार बन्द था, उसके बालक का पाँव लग जाने से वह खुल पड़ा। वह बालक को मन्दिर में ले गई। उसने वहाँ भगवान के दर्शन किये।

बालक मन्दिर में खेलने लगा। खेलते-खेलते वह बाहर आ गया। पास ही नागबावड़ी थी। बालक स्वाभाविक बाल चपलता से खेलता हुआ बावड़ी में गिर पड़ा। उसमें बहुत से जहरीले सर्प रहते थे। वह गिरा तो सही, परन्तु उसका पुण्य-प्रताप बहुत चढ़ा-बढ़ा था; इसलिए सर्पों ने उसे न काटकर उसकी रक्षा की-उसे अपने सिर पर उठा लिया।

उधर धाय पूजनोत्सव देखकर जब बाहर आई और उसने बालक को वहाँ न पाया, तब उसे बड़ी चिन्ता हुई। उसने बावड़ी में झांककर देखा। देखते ही उसकी छाती दहल गई। वह रोती हुई दौड़ी गई और बालक के बावड़ी में गिर जाने का हाल महारानी से उसने कह सुनाया। महारानी सुनते ही दौड़ी आई और आगा-पीछा कुछ न सोचकर पुत्र प्रेम से बावड़ी में जा कूदी। अहा! धन्य

इस पुत्र-प्रेम को, जिसके लिए माता अपना जीवन भी तुच्छ समझती है। यह प्रेम माता में ही होता है।

वह वहाँ की लीला देखकर चकित हो गयी। जल घुटने प्रमाण हो गया। बालक बड़ी निर्भयता के साथ सर्पों से खेल रहा है। तब उसे जान पड़ा कि मेरा पुत्र बड़ा प्रतापी है।

पुत्र के गिरने की खबर राजा के पास भी पहुँची। वह उसी समय वहाँ दौड़ा आया। परन्तु वह जबतक वहाँ पहुँचा, उसके पहले ही पुत्र और उसकी माँ बावड़ी में से निकल आई थी। राजा पुत्र को अक्षत शरीर देखकर अत्यधिक प्रसन्न हुआ। वह उसी समय अपनी प्रिया को लेकर जिनालय में पहुँचा। वहाँ उसने जिन भगवान की पूजा, स्तुति की और बड़ी खुशी मनाई। उसने सर्पों द्वारा अपने पुत्र का इस प्रकार सम्मान देखकर उसका दूसरा नाम नागकुमार रखा। इसके बाद वह अपनी प्रिया के साथ राजमहल पहुँचा। मुनि के वचनों को याद कर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई।

जब नागकुमार पाँच वर्ष का हुआ, तब वह जैनगुरु के पास पढ़ने के लिए भेजा गया। उसकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। वह थोड़े ही समय में न्याय, साहित्य, सिद्धान्त, विज्ञान, गणित, ज्योतिष, अलंकार और चित्रविद्या का अच्छा नामी विद्वान हो गया। उसके पाण्डित्य की देश-विदेश में खूब तारीफ की जाने लगी।

नागकुमार की प्रसिद्धि सुनकर एक दिन पञ्चसुगन्धिनी नाम की वैश्या ने राजसभा में आकर राजा से कहा कि महाराज! मेरे दो पुत्रियाँ हैं। एक का नाम किन्नरी और दूसरी का नाम मनोहरी

है। वे दोनों बड़ी रूपवती हैं। उन्हें अपनी सुन्दरता का बड़ा अभिमान है। वे बीन बजाना खूब अच्छा जानती हैं। मुझे उनका विवाह करना है। परन्तु उसमें उनकी शर्त यह है कि वे जिस समय बीन बजाने को रंगभूमि में उतरें, उस समय परीक्षा करके जो यह बात बतला देगा कि दोनों में छोटी अमुक है, उसी के साथ वे अपना विवाह करेंगी। नहीं तो वे दोनों ही तपस्विनी हो जायेंगी। मैंने राजकुमार की बड़ी तारीफ सुनी है। वे सब विषयों के अच्छे पण्डित हैं। तब आप उन्हें मेरी पुत्रियों की परीक्षा के लिए नियत कीजिए।

वैश्या के कहे अनुसार राजा ने कौतुकाक्रान्त हो पुत्र से कहा कि – कुमार! दिखलाओ अपना पाण्डित्य। महाराज की आज्ञा होते ही दोनों बालिका राजसभा में बुलवाई गईं। वे रंगभूमि में उतरीं। बीन बजने लगा। दोनों अपना-अपना कलाकौशल्य दिखलाने लगीं। दोनों दिखने में एक सी दिखती थीं। सर्व साधारण यहाँ तक कि राजा भी इस विषय में बड़ा ही व्यग्र था कि देखें कुमार कैसे इनकी परीक्षा करता है।

कुमार ने उन दोनों को बीन बजाते समय बड़े ध्यान से देखा। उनकी चाल ढाल देखी। उनके हावभावों का बड़ी सूक्ष्मता से निरीक्षण किया। उसने थोड़ी ही देर में अपने मन में निश्चय कर राजा से कहा कि – पूज्यपाद! मैंने जहाँ तक परीक्षा की, मुझे जान पड़ा कि इन दोनों में छोटी बहन किन्नरी है। सुनकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने फिर कुमार से पूछा – तुमने यह कैसे जान पाया कि किन्नरी छोटी है? इसके लिए प्रमाण क्या है?

जिससे ऐसा निश्चय किया जा सके। कुमार बोला – पूज्य! बीन बजाते समय मनोहरी जब किन्नरी की और आँख उठाकर देखती थी, तब किन्नरी नीची निगाह कर लिया करती थी। इसी से मैंने जान पाया कि किन्नरी छोटी है। पुत्र की परीक्षा देखकर राजा बड़ा हर्षित हुआ।

नागकुमार की विद्वत्ता देखकर पंच सुगन्धिनी को बहुत आश्चर्य हुआ। उसने अपनी पुत्रियों का अभिप्राय जानकर कुमार के साथ दोनों का विवाह कर दिया। नागकुमार उनके साथ सुख से समय बिताने लगा।

एक दिन महाराज राजसभा में बैठे हुए थे कि इतने में एक पुरुष ने आकर प्रार्थना की – महाराज! एक हाथी मत्त होकर शहर में घूम रहा है। सब लोगों को उससे बड़ा त्रास हो रहा है। कितने ही मनुष्यों को उसने हताहत भी कर डाले हैं। आप उसके पकड़वाने का प्रबन्ध जल्दी कराइए। बड़ी हानि हो रही है। राजा ने सुनते ही अपने श्रीधर नामक पुत्र को आज्ञा की कि तुम जाकर जल्दी उसके पकड़ने का प्रबन्ध करो। महाराज की आज्ञा सुनते ही वह उसी समय वहाँ से उठकर हाथी के पकड़ने के लिए चला गया। परन्तु जब उसने हाथी की भयंकर सूरत देखी तो उसके छक्के छूट गये। वह उसे देखते ही भाग खड़ा हुआ और महाराज के पास आकर बड़े भय के साथ बोला कि हाथी तो बड़ा उन्मत्त हो रहा है, उसका पकड़ा जाना असम्भव है। पुत्र की इस प्रकार भीरुता देखकर उन्होंने उसी समय नागकुमार से कहा कि पुत्र जाओ तो एक मत्त हाथी लोगों को बड़ा कष्ट दे रहा है, उसे किसी तरह

पकड़कर अपने वश करो। वह पिता की आज्ञा से वहाँ आया, जहाँ वह हाथी लोगों को तकलीफ पहुँचा रहा था। उसने अपनी बुद्धि की कुशलता से हाथी को उसी समय पकड़ लिया और फिर उसी पर चढ़कर वह महाराज के पास आया। उसने महाराज से बड़े विनय से प्रार्थना की कि यह हाथी आपकी सेवा में उपस्थित है। यह आपके योग्य है। इसे आप स्वीकार कीजिए। महाराज पुत्र की इस विनयशीलता से बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने पुत्र से कहा कि – पुत्र! तुमने इसे वश किया है, इसलिए यह तुम्हारे ही योग्य है। तुम्हीं इसे अपने काम लाओ। पिता की आज्ञा से वह हाथी को लेकर अपने महल चला गया।

एक दिन नागकुमार ने रास्ते में जाते समय देखा कि एक घोड़े का सईस अपने घोड़े को किसी यन्त्र से चारा खिला रहा है। उसने उससे पूछा कि इसे यन्त्र से घास क्यों खिलाया जाता है? सईस ने कहा – कुमार! यह बड़ा दुष्ट हो गया है। जो इसके पास जाता है, उसे लातें मारता है और काटने दौड़ता है। इसलिए यन्त्र द्वारा चारा खिलाया जाता है। सुनते ही कुमार ने घोड़े को बन्धन से मुक्त कर दिया और उस पर चढ़कर उसे इधर-उधर घुमाया। बाद में वह उसे महाराज के पास लिवा ले गया। महाराज से उसने प्रार्थना की कि प्रभो! यह घोड़ा बड़ा ही उद्धत हो रहा था। मैं इसे पकड़कर आपकी सेवा में ले आया हूँ। आप इसे स्वीकार कीजिए। राजा ने बड़ी प्रसन्नता से वह उसे ही दे दिया। वह घोड़े को अपने स्थान पर ले गया और सुख से रहने लगा।

***

एक दिन श्रीधर की माता विशालनेत्रा ने अपने पुत्र से कहा – पुत्र! यह तो कह कि तुझे भी कोई देश–विदेश में जानता है क्या? क्या कोई तेरा नाम भी लेता है? देख तो तेरी सौतेली माँ के पुत्र की सब जगह कितनी प्रतिष्ठा है? सब देश और विदेश में नागकुमार ही की तारीफ की जाती है। मुझे बड़ा दु:ख है कि तुझमें कुछ कर्तव्यशीलता नहीं। तू भी तो एक राजपुत्र है, फिर क्यों नहीं प्रतिष्ठा प्राप्त करने का उपाय करता है? जरा विचार तो तेरे कारण मुझे दूसरों के सामने कितना नीचा देखना पड़ता है। तुझे कुछ तो अपनी रक्षा का ख्याल करना चाहिए।

माता के कातर वचनों से श्रीधर को भी बड़ी चिन्ता हुई। वह माता से बोला – माता! तुम किसी तरह की चिन्ता न करो। मैं अवश्य तुम्हारे वचनों का पालन करूँगा। अपनी इस दशा का मुझे भी बहुत दु:ख है। इसके बाद उसने पाँच सौ ऐसे योद्धा, जो एक–एक हजार–हजार शूरवीरों को पराजित करने की शक्ति रखते थे; अपने अधिकार में लिए।

बसन्त ऋतु आयी। कुछ–कुछ गर्मी पड़ने लगी। उपवन सब प्रकार के फल फूलों से सुन्दर दिखने लगा। वृक्षों की डालियों –डालियों पर कोयल का कुहुकरव लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने लगा। लोगों का मन वसन्त–क्रीड़ा के लिए व्यग्र हो उठा। युवा और युवतियों के झुण्ड के झुण्ड वनविहार के लिए जाने लगे। नागकुमार भी अपने समवयस्क मित्रों के साथ जल विहार के लिए गया। उसने बहुत समय तक अनेक तरह की जल

क्रीडाएँ कीं। जब वह जल से बाहिर निकला, उसी समय उसकी माता उसके लिए सुन्दर वस्त्रभूषण लेकर वहाँ आ पहुँची। उसने पुत्र को बड़े प्रेम से वस्त्र पहराये। इसके बीच में ही एक घटना और हो चुकी थी, वह यह कि – जब पृथ्वीदेवी वस्त्रभूषण लेकर रास्ते में आ रही थी, तब उसे अपने महल पर बैठी हुई विशालनेत्रा ने देखा। वहीं पर महाराज जयंधर भी बैठे हुए थे। उसने पृथ्वीदेवी की ओर इशारा करके महाराज से कहा कि – प्राणनाथ! देखिए, देखिए पृथ्वीदेवी वस्त्राभूषण लेकर अपने उपपति के पास जा रही है। सुनकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। पर जब उसने देखा कि नागकुमार जल से बाहिर निकलकर माता के पावों में गिरा और माता ने वे सब वस्त्र भूषण उसे पहरा दिए, तब विशालनेत्रा को उसने बहुत धिक्कारा। उधर पृथ्वीदेवी पुत्र को साथ लेकर राजमहल आ गई। इतने में राजा भी वहाँ आ पहुँचा। पृथ्वीदेवी से उसने पूछा कि इस समय तुम कहाँ पर गई थीं? पृथ्वीदेवी बोली – अपने प्रिय पुत्र की जलक्रीड़ा देखने गई थीं। राजा ने कहा – हाँ तो अब से पुत्र को कहीं बाहर न जाने देना। वह महल में रहा करे, यह कहकर वह वहाँ से चल दिया।

इतने में नागकुमार वहाँ आया। उसने माता को चिन्तित देखकर पूछा कि – माता! कहो तुम्हें आज चिन्तित क्यों देखता हूँ। क्या किसी ने आपको कष्ट पहुँचाया है? पुत्र के प्रेम भरे वचन सुनकर माता ने कहा – पुत्र! अभी महाराज आए थे। उन्होंने न जाने किस कारण से तेरा महल के बाहर जाना रोक दिया है। क्या मैं, जैसे पींजरे में तोता बन्द कर दिया जाता है, वैसे ही तुझे घर

में बन्द देख सकूंगी? मुझे तो जान पड़ता है कि महाराज श्रीधर को प्राणपण से चाहते हैं और उसे ही वे प्रसिद्ध करना चाहते हैं। इसके सिवा और कोई कारण मैं तेरे बन्द करने का नहीं देखती।

नागकुमार को अपना घर में रहना पसन्द नहीं आया। वह उसी समय हाथी पर सवार हुआ और शहर में घूम-घूमकर शंख पूरने लगा। राजा ने आकस्मिक कोलाहल देखकर प्रहरी से कहा - जाकर देखो यह कोलाहल क्यों हो रहा है और कौन कर रहा है? उसने पीछा आकर महाराज से कहा - देव! वह तो अपने राजकुमार हाथी पर बैठे हुए शंख बजा रहे हैं।

पृथ्वीदेवी द्वारा अपनी आज्ञा का उल्लंघन देखकर राजा को बड़ा रंज हुआ। उसने क्रोध में आकर रानी के वस्त्राभूषण, धन सम्पत्ति आदि सब मँगाकर अपने खजाने में रखवा दिए और उसे एक सामान्य स्त्री की तरह दरिद्रिणी बना दिया।

जब नागकुमार शहर से लौटकर माता के पास आया, तब उसने माता की और भी बुरी दशा देखी। माता ने सब हाल पुत्र से कह सुनाया। वह उसी समय वहाँ से उठकर जुआ खेलने के अड्डे पर गया। वहाँ बड़े-बड़े राजा मिलकर जुआ खेल रहे थे। उसने भी उनके साथ खेलना आरम्भ किया और थोड़ी ही देर में उन्हें जीतकर कंगाल बना दिए। वहाँ से वस्त्राभूषण धनादिक लाकर उसने अपनी माता को सौंप दिये।

उधर वे सब राजे मिलकर जयंधर के पास आए और उनसे उन्होंने नागकुमार द्वारा की हुई अपनी सब दुर्व्यवस्था कह सुनाई।

जयंधर को नागकुमार की इस धृष्टता पर बड़ा रंज हुआ। उसने उसी समय उसे बुलवाया और कहा कि तुम जुआ खेलना खूब जानते हो। अच्छा, देखूं तुम्हारी कुशलता इस विषय में कैसी है? आओ मेरे साथ खेलो तो सही। नागकुमार कौतुकाक्रान्त होकर पिता के साथ ही खेलने लग गया। और उसने थोड़ी ही देर में राजा को भी हरा दिया और उसके खजाने, देश, आदि सभी जीत लिये। इसके बाद वह महाराज से बोला कि – पूज्यपाद! बस, अब मैं नहीं खेलूँगा। मुझे इतने में ही सन्तोष हुआ। यह कहकर नागकुमार ने खजाने में से अपनी माता के वस्त्राभूषण तो निकाल लिए और अवशिष्ट जितना धन आदिक उसने जीता था, वह महाराज को अर्पण कर दिया। इसके बाद वे वस्त्रादि ले जाकर उसने अपनी माता को सौंप दिए।

पुत्र की इस विनयशीलता पर प्रसन्न होकर जयंधर ने उसके लिए अपने शहर ही के पास एक छोटा, परन्तु बहुत सुन्दर नगर बनवा दिया। नागकुमार अपने सुन्दर नगर में अपनी प्रियाओं के साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

***

तीसरा परिच्छेद

इस समय मथुरा का राजा जयवर्मा था। उसकी प्रिया का नाम था जयवती। उनके दो पुत्र थे। उनके नाम व्याल और महाव्याल थे। ये दोनों भाई अच्छे विद्वान और विनयी थे।

एक दिन जयवर्मा मुनि की वन्दना करने को गया। साथ में वह अपने दोनों प्रिय पुत्रों को भी लिवा ले गया। मुनि द्वारा उसने धर्म का पवित्र उपदेश सुना। जब मुनिराज उपदेश देकर विरत हुए तब जयवर्मा ने उनसे पूछा – प्रभो! मेरे ये दोनों पुत्र अच्छे शूरवीर हैं। इनमें बल बहुत है। इनकी ताकत की समता एक करोड़ शूरवीरों से की जाती है। इसलिए मुझे आपसे इनके विषय में यह बात जाननी है कि क्या इन्हें भी किसी दूसरे की पराधीनता सहनी होगी, या ये अपने ही राज्य में रहेंगे? उत्तर में मुनि ने कहा कि – हाँ यद्यपि ये दोनों ही भाई बड़े भारी शूरवीर हैं, परन्तु तब भी इन्हें दूसरे की आधीनता स्वीकार करनी पड़ेगी। व्याल का भालस्थ नेत्र जिसके देखने से नष्ट हो जायेगा वही उसका स्वामी होगा। और इस महाव्याल की अपूर्व सुन्दरता देखकर भी जो सुन्दरी इसे न चाहेगी, उसका पति इसका स्वामी होगा। मुनि का कथन सुनकर जयवर्मा ने विचारा कि बड़े आश्चर्य की बात हैं जो ऐसे शूरवीरों को भी दूसरे का नौकर बनना पड़ेगा। कर्म की इस लीला को धिक्कार है। उसे इससे बड़ा वैराग्य हुआ। वह उसी समय व्याल को सब राज्य भार देकर साधु बन गया।

राज्य तो उन्हें प्राप्त हो गया, परन्तु उससे उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। उन्हें अपनी दास वृत्ति पर बड़ा ही आश्चर्य हुआ। वे इस बात की खोज में, कि देखें हमारा स्वामी कौन होगा, अपना राज्य मन्त्री के सुपुर्द कर पटना को चल दिये।

उस समय पटना का राजा श्रीवर्मा था। उसकी प्रिया श्रीमती थी। इनके एक पुत्री थी। उसका नाम था गणिकासुन्दरी। दोनों भाई पटना पहुँचे। राजमहल के नीचे से होकर जाते समय इन्हें राजकुमारी गणिका सुन्दरी की एक दासी ने देखा। वह इनके रूप को देखकर अपनी मालकिन के पास दौड़ी गई और बोली – कुमारी! मैंने दो बड़े सुन्दर राजकुमार देखे हैं। उनमें एक तो साक्षात् महादेवसा है और दूसरा कामदेव से किसी बात में कम नहीं है।

कुमारी बोली – वे कहाँ हैं?

दासी बोली – आइए, मैं आपको बतलाती हूँ। ऐसा कहकर वह कुमारी को अपने साथ लिवा लाई और झरोखे में से दोनों कुमारों को उसने उसे दिखला दिये।

कुमारी महाव्याल के रूप सुधा का पान करके बड़ी प्रसन्न हुई। साथ ही उस पर काम ने अपना आधिपत्य जमा लिया। उसे सारा संसार बिना महाव्याल की प्राप्ति के सूना–सा दिख पड़ने लगा।

धीरे–धीरे यह बात श्रीवर्मा को मालूम हो गई। वह अपनी पुत्री का उचित जगह प्रेम देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने बड़ी प्रसन्नता से राजकुमारी का विवाह महाव्याल के साथ कर दिया।

गणिकासुन्दरी की उपमाता (धाय) की भी एक कन्या थी। उसका नाम था ललितासुन्दरी। वह भी बड़ी सुन्दरी थी। महाराज की अनुमति से ललितासुन्दरी की माता ने उसका विवाह महाव्याल के बड़े भाई व्याल से कर दिया। ये दोनों भाई बड़े सुख चैन से अब पटना में ही रहने लग गये।

पटना के पास ही विजयपुर राजधानी थी। उसका राजा जितशत्रु था। जितशत्रु ने श्रीवर्मा से प्रार्थना की–आप अपनी कुमारी का विवाह मुझसे कर दें। श्रीवर्मा ने उसका विवाह महाव्याल से कर दिया था, इसलिए उसे इन्कार लिख भेजा। जितशत्रु को श्रीवर्मा का यह वर्ताव अच्छा नहीं जान पड़ा। उसने जबरन कुमारी का विवाह करने के लिए पटना को जा घेरा। उसके चारों ओर अपनी सेना नियुक्त कर दी।

व्याल को जब लोगों के द्वारा शहर घेरने का हाल ज्ञात हुआ, तब उसने अपने भाई से एकान्त में कहा – श्रीवर्मा ने हमारा आशातीत उपकार किया है, इसलिए हमें चुप बैठना उचित नहीं; किन्तु ऐसे समय में उसे सहायता देना हमारा परम कर्तव्य होना चाहिए। क्योंकि –

न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति।

अच्छा, मैं जितशत्रु के पास जाकर उसे समझा देता हूँ कि तुम इस युद्ध में कुछ लाभ न उठा सकोगे। फिर वह यदि न माने तो उसका उपाय किया जायेगा।

व्याल जितशत्रु के पास गया और उससे बोला कि मुझे

महाराज श्रीवर्मा ने तुम्हारे पास यह कहने को भेजा है कि, 'तुम यहाँ से अपने देश को वापिस लौट जाओ। इसी में तुम्हारी कुशल है। अन्यथा तुम्हें यम का द्वार देखना पड़ेगा – आदि।'

व्याल के वचनों को सुनते ही जितशत्रु की आँखों में आग बरसने लगी। वह अपने को नहीं सम्हाल सका। म्यान से खड्ग निकालकर वह व्याल के मारने को उस पर झपटा, परन्तु व्याल तो बड़ा शूरवीर था, इसलिए उसका वह कुछ न कर सका। उल्टा व्याल ने ही उसे उसी के डुपट्टे से बाँध लिया और वहाँ से लाकर अपने भाई के सामने रख दिया। महाव्याल के उसे श्रीवर्मा के पास पहुँचा दिया। श्रीवर्मा ने उसे कैदखाने में डलवा दिया।

एक दिन व्याल ने भाई से प्रार्थना कर अपने कहीं अन्यत्र जाने की अनुमति ले ली और पटना से निकलकर वह कनकपुर पहुँचा। इधर तो यह शहर के पास पहुँचा और उधर नागकुमार का शहर के बाहर निकलना हुआ। कुमार के दर्शनमात्र से व्याल का तीसरा नेत्र नष्ट हो गया। जब नेत्र के नष्ट होने का हाल उससे लोगों ने कहा और स्वयं भी उसने हाथ ललाट पर फेरकर देखा तो उसे वह नेत्र नहीं दीख पड़ा। यह प्रताप उसने कुमार का ही समझा। वह कुमार के पास गया और उससे बोला कि–

कुमार! आप बड़े पुण्यशाली महात्मा हैं। मेरी इच्छा आपके चरणों की सेवा करने की है। आप कृपा करके मुझे अपना दास बनाइए।

नागकुमार ने उसे एक अच्छा उत्साही युवक देखकर अपने

पास रख लिया। इसके बाद उसे अपने साथ-साथ वह घर पर लिवा ले गया। घर पर पहुँचकर कुमार ने व्याल को तो घर की रक्षा के लिए द्वार पर नियुक्त किया और आप भीतर चला गया। व्याल अपना कर्तव्य पालन करने के लिए द्वार पर ही खड़ा रहकर पहरा देने लगा।

व्याल खड़ा-खड़ा पहरा दे रहा था कि इतने में बहुत से योद्धा सजे हुए उसी की ओर आए। उन्हें देखकर इसने द्वारपालों से पूछा कि ये सब कहाँ जा रहे हैं?

द्वारपालों ने कहा - अपने कुमार का एक सौतेला भाई है। उसका नाम श्रीधर है। उसी के ये योद्धा हैं। ये बड़े क्रूर हैं। ये हरसमय इस चिन्ता में रहा करते हैं कि कभी मौका मिले और कुमार को मार डालें। उनकी बात सुनकर व्याल अपने क्रोध के तीव्र वेग को नहीं रोक सका। उसने उसी समय हाथी बाँधने के खम्भे को उखाड़कर उन्हें आड़े हाथों मारना शुरु किया। कितने को तो उसने वहीं ढ़ेर कर दिए और कितने बेचारे जी लेकर भाग निकले।

इस घटना का हाल सुनकर कुमार बाहर आया और व्याल की वीरता की बड़ी तारीफ करने लगा। उसे वहाँ आये क्षणभर भी न बीता होगा कि तुरन्त ही श्रीधर अपने और योद्धाओं को लेकर कुमार पर आ चढ़ा।

श्रीधर की युद्ध के लिए चढ़ाई सुनकर कुमार भी निश्चिन्त न बैठकर उसी समय हाथी पर सवार हुआ और युद्धभूमि में आ डटा।

पुत्रों के युद्ध की बात पिता के पास पहुँची। जयंधर ने उसी समय अपने मन्त्री को भेजकर कहा कि तुम जल्दी जाकर युद्ध को रोक दो। मन्त्री ने जाकर दोनों भाईयों को समझाया और उन्हें युद्ध करने से रोका। दोनों भाई अपने-अपने महल लौट आये।

मन्त्री सीधा युद्धभूमि से महाराज के पास आया और बोला- प्रभो! यह आपस का द्वेष तबतक न मिटेगा, जबतक आप दोनों में से किसी एक को कुछ दिनों के लिए अपने शहर से अलग न कर देंगे। और तभी ये दोनों कुशलपूर्वक रह भी सकेंगे।

राजा बोला - तुम कहते हो, वह ठीक है। अच्छा तो श्रीधर को जाकर कह दो कि वह यहाँ से चला जाये। मैं नागकुमार के विषय में उसकी कुटिलता बहुत दिनों से देख रहा हूँ। उसका हृदय बड़ा मलिन है।

मन्त्री ने कहा - महाराज! आपका कहना यथार्थ है और इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्रीधर नागकुमार से शत्रुता रखता है। परन्तु तब भी मैं उचित यही समझता हूँ कि नागकुमार को अलग किया जाये। इसका कारण है - मैं श्रीधर में ऐसा कोई गुण नहीं देखता कि वह विदेश में अपना पेट तक भी भर सकेगा, किन्तु मुझे विश्वास है कि वह भूख-भूख चिल्लाता-चिल्लाता ही मर मिटेगा। इसलिए उस पर तो आप दया ही करें। और नागकुमार अच्छा उद्योगी और साहसी है, साथ में पुण्यशाली भी है। उसे आप अलग भी कर देंगे तो वह अपना निर्वाह खूब अच्छी तरह से कर सकेगा। बल्कि यह समझिये कि विदेश में वह अच्छी कीर्ति प्राप्त करेगा। उसे आप देखते नहीं कि वह कितना तेजस्वी है।

राजा ने कहा – जैसा तुम उचित समझो, वही करो। मैं तो यह चाहता हूँ कि इन दोनों का द्वेष मिट जाये।

मन्त्री वहाँ से सीधा नागकुमार के पास गया और उसे महाराज की आज्ञा उसने कह सुनाई।

नागकुमार बुद्धिमान था। वह पिता की कठोर आज्ञा से कुछ भी विचलित न हुआ। वह मन्त्री से यह कहकर, कि मुझे महाराज की आज्ञा स्वीकार है, अपनी माता के पास गया और उससे सब हाल उसने कह दिया। साथ में अपना जाना भी उसने माता को बतला दिया।

इसके बाद वह अपनी प्रेयसी के पास गया और उसे साथ लेकर उसी समय वहाँ से रवाना हो गया।

जिस दिन नागकुमार गया, उस दिन सारे शहर को बड़ा दु:ख हुआ। भला, प्रजा प्रिय राजपुत्र का जाना किसे दु:खकर न होगा। यहाँ तक कि व्यापारियों ने उस दिन हड़ताल कर दी।

नागकुमार वहाँ से चलकर मथुरा में पहुँचा। वहाँ वह एक देवदत्ता नाम की ब्राह्मणी के यहाँ ठहरा। देवदत्ता ने इसकी खानपानादि से पाहुनगति की। नागकुमार ब्राह्मणी की उदारता पर बड़ा प्रसन्न हुआ।

दूसरे दिन भोजनोपरान्त नागकुमार शहर में जाने को उद्यत हुआ। उसे शहर में जाने के लिए तैयार देखकर देवदत्ता बोली–

पुत्र! शहर न जाओ।

कुमार – माता, क्यों।

देवदत्ता – यहाँ का राजा बड़ा दुष्ट है। वह कन्याकुब्जपुरी के राजा की राजकुमारी सुशीला को, जिसका सिंहपुरी के राजा हरिवर्मा के लिए देना निश्चित हो चुका था, जबरन उससे हरकर अपने यहाँ ले आया है और उस बेचारी को अपने साथ विवाह करने को बाध्य करता है। कुमारी उसे पसन्द नहीं करती। इसलिए उस पापी ने बेचारी को कैदखाने में डलवा दिया है। वह वहाँ पड़ी–पड़ी बड़ी दीनता के साथ जो वहाँ होकर निकलता है, उसी से रो–रोकर अपने उद्धार की प्रार्थना किया करती है। उसका रोना आँखों से नहीं देखा जाता। परन्तु कठिनता यह है कि उस दुष्ट राजा के पास किसी की नहीं चलती। जो उसके उद्धार की चेष्टा करता है, राजा उसे ही भयानक दण्ड देता है। मुझे विश्वास है कि तुम उसकी वह हालत नहीं सह सकोगे। तुम्हारे दयालु हृदय में जो 'वसुधैव कुटुम्बकम्।' की भावना समा रही है, वह कभी बिना उसका उद्धार कराये तुम्हें पीछा न लौटने देगी। सम्भव है तुम उसमें सफलता प्राप्त न कर सको तो बड़ी विपत्ति के आने की संभावना है। इसलिए मैं चाहती हूँ कि तुम बाजार में न जाकर यहीं सुख से रहो।

कुमार ने कहा – माँ, तुम इसकी चिन्ता न करो कि मुझे किसी तरह की तकलीफ उठानी पड़ेगी। मैं बड़ी कुशलता से इसमें सफलता प्राप्त करूँगा। इस पर भी यदि कुछ घटना हो जाये तो मुझे उसकी कुछ परवाह नहीं। क्योंकि यह जीवन यदि दूसरों के लिये काम न आया तो इसे निस्सार ही समझना चाहिए। कुछ हो, मैं तो एक समय उसके पास अवश्य ही जाऊँगा और जिस तरह

बन पड़ेगा उसके बचाने की चेष्टा करूँगा। इतना कहकर नागकुमार देवदत्ता के उत्तर की कुछ प्रतीक्षा न कर चल दिया। वह वहाँ पहुँचा जहाँ सुशीला रो-रोकर अपना जीवन बिता रही थी। उससे उसका रोना न देखा गया। वह सुशीला से बोला - राजकुमारी! तुम अब किसी तरह की चिन्ता न करो। मैं तुम्हारा इस दु:खद दशा से अवश्य उद्धार करूँगा। ऐसा कहकर उसने अपने नौकरों को आज्ञा दी कि इन पहरेदारों को बाँधकर इसे अपने स्थान पर लिवा ले चलो। नागकुमार की आज्ञा का उसी समय पालन किया गया। सुशीला बन्धन से निर्मुक्त कर दी गई।

अपने नौकरों की दुर्दशा और सुशीला का छुड़ा ले जाना सुनकर दुष्टवाक्य को बड़ा क्रोध आया। वह उसी समय सेना लेकर युद्ध के लिए नागकुमार पर जा चढ़ा।

उधर व्याल नीलगिरि नाम के हाथी को पानी पिलाकर आ रहा था। इस युद्ध का कोलाहल उसे सुनाई पड़ा। वह भी वहाँ आकर उपस्थित हो गया। उसके आते ही दुष्टवाक्य की नजर उस पर पड़ी और उधर से व्याल ने भी उसे पुकारा। दुष्टवाक्य झट से उसके पास आया और बोला - प्रभो! क्षमा कीजिए। मेरी गलती हुई जो मैंने कुमार के विरुद्ध शस्त्र उठाया। उसे विनीत देखकर व्याल नागकुमार के पास ले गया और कुमार से प्रार्थना कर उसका अपराध क्षमा करवाया। इसके बाद व्याल ने कुमार को अपने इधर आने का सब हाल सुना दिया। व्याल की कार्य-कुशलता सुनकर कुमार बड़ा सन्तुष्ट हुआ।

कुमार ने सुशीला को हरिवर्मा के पास, जिससे कि पहले उसकी शादी होना निश्चित हो चुका था, भेज दी। कुमारी अपने अभीष्ट प्रियतम को प्राप्त कर बहुत प्रसन्न हुई।

***

नागकुमार इस समय पूर्ण युवावस्था को प्राप्त है। वह एक दिन बगीचे की सैर करने को जा रहा था। उस समय उसने बहुत से लोगों को, जो अपने-अपने कन्धों पर बीन रखे हुए थे, जाते देखा। उसने उनसे पूछा - आप कहाँ से आ रहे हैं?

उनमें से एक आगे होकर बोला - हम इस समय कश्मीर से आ रहे हैं।

कुमार - क्या वह आपका खास देश है?

एक - नहीं, हम वहाँ इसलिए गये थे कि वहाँ के राजा की कुमारी बड़ी रूपवती है। उसका नाम त्रिभुवना है। उसकी प्रतिज्ञा है कि जो मुझे बीन बजाने में हरा देगा, उसी के साथ मैं अपनी शादी करूंगी। हम लोग उसी की प्राप्ति के लिए गये थे, परन्तु हमें कहते हुए शर्म लगती है कि वह अपने विषय में बड़ी विदुषी निकली। उससे हमें हार जाना पड़ा। हम अब वापिस अपने वतन को जा रहे हैं। कुमार, मैं एक राजकुमार हूँ। मेरे पिता सुप्रतिष्ठ देश के अधिपति हैं। उनका नाम शक प्रसिद्ध है। इतना हाल कहकर कीर्तिवर्मा वहाँ से आगे बढ़ा।

कीतिवर्मा की बातों से नागकुमार की भी उत्कण्ठा कश्मीर जाने की हुई। वह कुछ दिनों के बाद कश्मीर के लिए रवाना हुआ।

जब वह कश्मीर पहुँचा, तब वहाँ के राजा ने उसका अच्छा सत्कार किया। उसे बड़े उत्सव से शहर में प्रवेश कराया। कुमार ने अपने आने का कारण उससे कह सुनाया। उसे यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि कुमार उसकी राजकुमारी के साथ विवाह की इच्छा से आया है।

दूसरे दिन रंगभूमि तैयार की गई। कुमार और कुमारी बीन बजाने को उतरे। दोनों अपनी-अपनी चतुरता परिश्रम से बतलाने लगे। आखिर कुमार ने विजयलक्ष्मी प्राप्त की। उपस्थित मण्डली ने कुमार के पाण्डित्य की बड़ी तारीफ की। उन्हें इस वरवधू की जोड़ी से बड़ी खुशी हुई। त्रिभुवना ने भी अपने को धन्य माना। नन्द ने पुत्री की प्रतिज्ञा के अनुसार नागकुमार के साथ उसकी शादी कर दी। नवयुगल सुख से समय बिताने लगे।

***

एक दिन नागकुमार राजसभा में बैठा हुआ था। इतने में वहाँ एक साहूकार आया। वह देश-विदेश की सैर करके चला आ रहा था। नागकुमार ने इस कौतुक से, कि वह देश-विदेश में खूब घूमा हुआ है, उससे पूछा - तुमने सैर तो बहुत की है, अच्छा कोई आश्चर्य की बात भी देखी हो तो बताओ।

साहूकार बोला - कुमार! मुझे पहले यह विश्वास नहीं था कि भूतप्रेत सचमुच में होते हैं। परन्तु जब मैं भूमितिलक नगर में आया, तब उसके बाहर रम्यक नाम के बगीचे में देखा कि वहाँ एक मनुष्य बैठा-बैठा सब दिन चिल्लाया करता है और कहता है

कि मेरी स्त्री को एक राक्षस यहाँ से उठाकर ले उड़ा। वह पास की गुफा में रहता है। वह चाहता है कि मुझे कोई इस आफत से छुड़ा दे। इसीलिए उस ओर जो आता है, उसी से वह अपने छुड़ाने की प्रार्थना किया करता है। मेरे सामने बहुत से लोग हिम्मत कर-करके उसके छुड़ाने की कोशिशें करने लगे, परन्तु किसी को सफलता प्राप्त नहीं हुई। जो राक्षस की गुफा में जाते थे, वे फिर वहाँ कुछ न कुछ प्रसाद बिना पाये नहीं लौटते थे। मुझे तो उस विचित्र घटना से बड़ा आश्चर्य हुआ।

नागकुमार ऐसी बात सुनकर कब निश्चिन्त बैठनेवाला था। वहाँ अब उसे क्षणभर भी रहना मुश्किल हो गया। उसके दिल में उक्त घटना के देखने की बड़ी उत्कण्ठा बढ़ गई। उसने उक्त सब हाल महाराज नन्द से कह सुनाया और उनसे जाने के लिए प्रार्थना की। नन्द, कुमार का अधिक आग्रह देखकर उसे रोक न सके। वह अपनी प्रिया को साथ लेकर वहाँ से चल दिया और थोड़े ही दिनों में घटनास्थल पर जा पहुँचा।

दूसरे दिन वह भोजनादि से निवृत्त हुआ। बारह बजे होंगे। इतने में बगीचे की एक ओर से उसके कानों में रोने की आवाज आई। जिधर से वह आ रही थी, उधर ही वह गया। पहुँचकर उसने देखा कि एक मनुष्य रो रहा है। उसने उससे पूछा -

कुमार - तुम कौन हो?

मनुष्य - महाराज! मैं पारधी हूँ।

कुमार - तुम्हारा नाम क्या है?

मनुष्य – जी, रम्यक।

कुमार – किसलिए तुम अभी रोते थे?

मनुष्य – महाराज! मेरी स्त्री को एक राक्षस ले उड़ा है।

कुमार – क्या तुम्हें उसके रहने की जगह मालूम है?

मनुष्य – कुमार! सामने ही गुफा है। उसी में मैंने उसे घुसते देखा था।

कुमार – चलकर उसे बताओ तो।

मनुष्य – महाराज! मेरी हिम्मत वहाँ जाने की नहीं पड़ती।

कुमार – तब?

मनुष्य – हाँ दूर रहकर दिखा सकता हूँ।

कुमार – अच्छा, चलो!

इसके बाद कुमार को ले जाकर उसने गुफा दिखा दी। कुमार बड़ी निर्भयता के साथ उसमें जा घुसा। वहाँ उसने एक भयंकर राक्षस देखा। परन्तु उसकी कुछ परवाह न कर उसके पास वह चला ही गया।

राक्षस कुमार का प्रतापी चेहरा देखकर स्तम्भित हो गया। उससे कुमार के विरुद्ध कुछ नहीं बन पड़ा। उसने उल्टा कुमार का सम्मान किया और उसके सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना की – स्वामी! इस दास पर क्या आज्ञा होती है?

कुमार ने कहा – तुमने उस बेचारे गरीब की स्त्री को अपने पास लाकर बड़ा अन्याय किया है। तुम्हें उचित है कि तुम उसे वापिस लौटा दो।

राक्षस ने उसी समय स्त्री को लाकर कुमार के सामने खड़ी कर दी और बोला – प्रभो! मेरा अपराध क्षमा कीजिए। इसके अतिरिक्त उसने चन्द्रहासखड्ग और एक कामकरण्डक नाम की शैय्या कुमार को भेंट की।

वहाँ से निकलकर कुमार उसी पारधी के पास गया और उसे उसकी स्त्री सौंपकर उसने फिर पूछा – क्या इस उपवन में कुछ और भी देखने की वस्तु है?

पारधी बोला – वह देखिए एक और गुफा है, उसे आप अवश्य देखें। वह देखने के योग्य है।

कुमार उसे देखने को वहाँ से चला। उसके पास जाकर वह देखता है तो उसे एक बड़ी खूबसूरत सुन्दरी गुफा के द्वार पर हाथ में सोने का कलश लिए खड़ी हुई मिली।

कुमार के पहुँचते ही उसने उसके जल से पाँव धोये और विनीत होकर वह कुमार से बोली – स्वामी! गुफा के भीतर प्रवेश कीजिए।

कुमार उसके कहने पर गुफा के भीतर गया। उस स्त्री ने कुमार को एक अच्छे आसन पर बैठाया और बोली – कुछ आज्ञा कीजिए।

कुमार बोला – पहले तुम यह बताओ कि तुम कौन हो और किसलिए यहाँ आई हो?

वह बोली – मेरा नाम सुदर्शना है। मैं एक देवी हूँ। यहाँ आप ही के लिए ठहरी थी। यहाँ और भी बहुत सी देवियाँ हैं। इतने

दिन तक मैंने उनकी रक्षा की। अब आप आ गये हैं। उन्हें ग्रहण कर उनकी रक्षा कीजिए। वे सब देवियाँ एक-एक विद्या की एक-एक मालकिन है।

कुमार ने कहा - बात क्या है, खुलासा करो।

सुदर्शना बोली - एक मलकापुर नाम का शहर है। उसके राजा का नाम विद्युत्प्रभ है। वह विद्याधर है। उसकी रानी का नाम विमलप्रभा है। उसका एक पुत्र है। उसका नाम है जितशत्रु। उसने इसी गुफा में बारह वर्ष तक विद्या साधन की। आकाशगामिनी आदि बहुतसी विद्याएँ उसे सिद्ध भी हो गईं।

इसी पर्वत की अन्तिम गुफा में एक सुवृत्त नाम के मुनि ध्यान किया करते थे। वे बड़े तपस्वी थे। यहीं उन्हें केवलज्ञान हुआ। उस समय देवता लोग उनकी पूजन के लिए आये। उनके बाजों का शब्द सुनकर जितशत्रु ने एक विद्या को इसलिए भेजा कि देखो, क्या है? यह बाजों का शब्द कहाँ से आता है? उसने पीछे आकर कहा - सुवृत्तमुनि को केवलज्ञान हुआ है। इसलिए देवता उनकी पूजन करने को आये हैं।

सुनकर जितशत्रु भगवान के दर्शन करने को गया। वहाँ उसने धर्मोपदेश सुना। उपदेश का प्रभाव उसके हृदय पर बहुत पड़ा। उसे एक साथ संसार से वैराग्य हो गया। उसने भगवान से दीक्षा के लिए प्रार्थना की। उसे दीक्षा दी गई। वह साधु हो गया। तब हमने उससे कहा - तुमने बहुत कष्ट सहकर हमें प्राप्त कीं। हमारे द्वारा तुम्हें कुछ लाभ भी नहीं हुआ। ऐसी हालत में तुम्हारा कष्ट

उठाना और हमारा आना निष्फल ही हुआ। ऐसा करना तुम्हें ठीक नहीं था। अस्तु। तो अब बतलाइए, हम किसकी आधीनता में रहें? उसने भगवान से पूछकर कहा – एक राजकुमार, जिसका नाम नागकुमार है, यहाँ आयेगा। उसी की आधीनता में तुम रहना। उसने हमें आपके आने का दिन भी बतला दिया था। तभी से हम यहाँ रहती हैं। आज आपके आने का दिन था। इसीलिए मैं सोने का कलश लेकर आपकी प्रतीक्षा कर रही थी। आप भी हमारे पुण्य से यहाँ आ गये। हम सब आपकी सेवा करने को तैयार हैं। आज्ञा कीजिए।

नागकुमार उन्हें यह कहकर, कि अच्छा तुम स्वच्छन्द आनन्द से रहो, पर जब किसी काम के लिए मैं तुम्हें याद करूँ तो वहाँ उपस्थित होना, चला गया।

कुमार वहाँ से निकलकर फिर उसी पारधी के पास आया। उसने उससे पूछा कि इसके अतिरिक्त कहीं और भी तुमने कोई आश्चर्य की बात सुनी है क्या? वह बोला – यहाँ से उत्तर दिशा की ओर कुछ दूरी पर एक पिशाच की मूर्ति बनी हुई है। वह दिखने में बड़ी भयानक है। उसके पास जाने की हिम्मत किसी को नहीं होती। वह ऐसी बुद्धिमानी से बनाई है कि जो उसके पास जाता है, उसका फिर निर्विघ्न आ जाना असम्भव है।

यह सुनते ही कुमार को उसके देखने की बड़ी उत्कण्ठा हुई। वह वहाँ जा पहुँचा। उसने बड़ी बारीकी से उस मूर्ति का निरीक्षण किया और उसमें जो बातें आश्चर्यजनक थीं, उन्हें जान लीं। इसके

बाद वह बड़ी निर्भीकता के साथ उसके पास चला गया और उस मूर्ति का एक पाँव खींचकर उसने उसे नीचे गिरा दी। उसके नीचे से एक खजाना निकला। उसमें एक शिलालेख रखा हुआ था। कुमार ने उसे उठाकर वाँचा। उसमें लिखा था कि –

''जो इस पिशाचमूर्ति को गिरा देगा, वह इसके नीचे गड़े हुए धन का मालिक होगा।'' शिलालेख को वाँचकर उसने विद्या की अधिष्ठात्री देवियों को याद किया और उन्हें उस धन की रक्षा का भार सौंपकर आप वहाँ से चल दिया। रास्ते में उसे एक मुनिराज आते हुए दिख पड़े। वह उनके पास गया और उन्हें नमस्कार कर वहाँ से कहीं अन्यत्र जाने के लिए रवाना हुआ।

एक गिरिकूट नाम का शहर है। उसके राजा का नाम वनराज है। वनराज की रानी थी वनमाला। उनके एक पुत्री थी। उसका नाम था लक्ष्मीमती। वह बड़ी विदुषी और रूपवती थी। रति उसकी नयन–सुन्दर रूपमधुरिमा को देखकर अपना जन्म निस्सार समझती थी।

वनराज ने एक दिन अविधज्ञानी मुनि से पूछा – भगवन्! मेरी कुमारी का स्वामी कौन होगा?

मुनि बोले – शहर के बाहर एक बड़ा भारी बड़ का झाड़ है। परन्तु वह वर्षों से सूखा पड़ा हुआ है। जिस महापुरुष के उसके नीचे बैठने से उस पर अंकुर फूट निकलेंगे, वही उसका स्वामी होगा। इसलिए वहाँ हर समय एक मनुष्य इस बात के देखने को रहना चाहिए।

नागकुमार रम्यक वन से निकलकर गिरिकूट शहर की ओर आया। बहुत दूर के श्रम को मिटाने की इच्छा से वह उस बड़ के नीचे बैठ गया। उसके बैठते ही वर्षों का सूखा वृक्ष एक साथ अंकुरित हो उठा। वह आदमी, जिसे वनराज ने इसी बात की निगरानी के लिए नियुक्त किया था, नागकुमार के पास आया और उसने वनराज की सब बातें उसे कह सुनाई। इसके बाद वह, कुमार से यह कहकर, कि मैं अपने मालिक को आपके आने की सूचना दे आऊँ, तबतक आप यहीं पर ठहरें, चला गया।

अतिध्वज के द्वारा वनराज, नागकुमार के आने के समाचार सुनकर बड़ा हर्षित हुआ। वह उसी समय बड़े ठाट बाट से कुमार को शहर में लिवा ले जाने को उसके सामने आया। शहर में उसे लिवा कर वनराज ने उसकी बहुत पाहुनगत की। इसके बाद उसने अच्छे दिन में अपनी पुत्री का विवाह नागकुमार से कर दिया और उसे बहुत-सा दहेज दिया।

नागकुमार वहाँ आनन्दपूर्वक समय बिताने लगा सही, परन्तु उसके हृदय में यह प्रश्न बारबार उठ करता था कि वनराज कौन है? कैसे इसका नाम वनराज पड़ा है? इस शहर की स्थिति से जान पड़ता है कि यह थोड़े ही समय से वसा है। ये सब बातें क्या हैं? वह इनके जानने के लिए उत्कण्ठित रहता था।

एक दिन नागकुमार को दो मुनियों के दर्शन हुए। उनके नाम जय और विजय थे। उसने समय पाकर उक्त बातें मुनियों से पूछीं। तब उनमें से जय ने कहा –

एक पुण्ड्रवर्धन पुर है। उसका राजा है सोमप्रभ। वह वनराजा का रिश्तेदार है। सोमप्रभ के दादा ने वनराज के दादा को अपने शहर से निकाल दिया था। वे आकर इस जगह रहे। यहाँ कई पीढ़ियों के बाद यह वनराज हुआ। तब इसने अपनी बुद्धि और हिम्मत से धन और यश प्राप्तकर यह शहर बसाया। उसका नाम गिरिकूट रखा। नागकुमार की उत्कण्ठा मिटी। वह मुनियों को नमस्कार कर अपने महल चला गया। उसने वहाँ जाकर एक स्तम्भ में यह सब बातें, जैसी कि मुनि ने कही थीं, उत्कीर्ण करा दी।

इसके बाद व्याल को बुलाकर उसने कहा – तुम पुण्ड्रवर्धनपुर जाकर वहाँ के राजा सोमप्रभ से कहो कि – मुझे नागकुमार ने आपके पास भेजकर मेरे द्वारा यह सन्देशा कहा है कि 'आप गिरिकूट को अपने अधिकार में से छोड़ दीजिए।' व्याल के सोमप्रभ से जाकर उक्त हाल कहा। सुनते ही उसे बड़ा क्रोध आया। वह उसे वरदाश्त न कर सका। उसने कहा – ऐसा कहनेवाला अन्यायी है। उसने क्या समझकर मुझे ऐसा कहलवाया। मैं उसके इस अन्याय को नहीं सह सकता। उससे जाकर कह दो कि यदि तुम अपना हित चाहते हो तो पिता के ही पास रहो। कहीं बाहर न निकलो। जान पड़ता है वह देश–विदेश में ऐसा अनर्थ करने के लिए ही भ्रमत है। उसे अपनी दुष्टता छोड़ देनी चाहिए। नहीं तो उसके लिए यह बहुत हानि कर होगी।

व्याल से अपने मालिक की बुराई सहन नहीं हुई। वह यद्यपि केवल सन्देशा कहने को गया था, परन्तु उसे स्वामी–भक्ति के

वश होकर सोमप्रभ के विरुद्ध कार्य करना पड़ा। उसने उसी समय उसे अपने बल से बाँध लिया और वह हाल नागकुमार के पास लिख भेजा।

पत्र पढ़कर नागकुमार वनराज को लेकर पुण्ड्रवर्द्धनपुर गया। वहाँ सोमप्रभ की अवस्था पर उसे बड़ी दया आई। उसने व्याल से कहकर सोमप्रभ को छुड़वा दिया। और आप लक्ष्मीमती के साथ वहीं कुछ दिनों के लिए ठहर गया।

उधर सोमप्रभ को अपने पर नागकुमार के अनुग्रह से बड़ा शर्मिन्दा होना पड़ा। उसे कर्मों की इस लीला से बड़ा वैराग्य हुआ। वह अपने उत्कृष्ट वैराग्य को रोक नहीं सका। उसने उसी समय जाकर यमधृतमुनि से जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। वह थोड़े ही समय में अच्छा तपस्वी हो गया। कठिन से कठिन तपश्चरण करने लगा, परीषह सहने लगा। धन्य ऐसे योगिराजों को!

***

चौथा परिच्छेद

एक सुप्रतिष्ठक नामक शहर था। वह संसारभर में प्रसिद्ध था। उसका राजा जयवर्मा था। उसकी रानी का नाम था जयमती। उनके दो पुत्र थे। उनके नाम अछेद्य और अभेद्य थे।

एक दिन पिहिताश्रवमुनि उक्त शहर में आये। राजा अपने पुत्रों को लेकर मुनि की पूजन के लिए गया। मुनि से उसने धर्मोपदेश सुनकर पूछा – भगवन्! क्या मेरे ये पुत्र किसी की सेवा करेंगे या अपना राज्य चलायेंगे? मुनि बोले – जिस महापुरुष ने पुण्ड्रवर्धन नगर से उसके मालिक सोमप्रभ को राज्यच्युत किया है – राज्य से अलग किया है – वही इनका स्वामी होगा। अपने पुत्रों का भविष्य सुनकर जयवर्मा को बड़ा वैराग्य हुआ। उसने संसार की इस लीला को–जो आज राजा है, वही कल रंक हो जाता है और जो आज रंक है, वह कल राजा होता है – देखकर उसी समय अपने बड़े पुत्र अछेद्य को राज्यभार सौंप दिया और आप वनवासी बन गया।

कुछ दिनों के बाद इसी शहर में सोमप्रभमुनि कुछ साधुओं को साथ लिए आ निकले। ये दोनों भाई उनकी वन्दना करने को गये। उन्हें नमस्कार कर इन्होंने पूछा – स्वामी! आपके दीक्षा ग्रहण करने का कारण मैं सुनना चाहता हूँ। सोमप्रभमुनि के दीक्षा लेने का कारण उनमें से एक मुनि ने यों कहा –

'ये पुण्ड्रवर्धनपुर के रहनेवाले हैं। इनका नाम सोमप्रभ है।

जयंधर के पुत्र नागकुमार ने इन्हें राज्य से पृथक् कर दिया था। संसार की इस क्षणिक लीला से इन्हें बड़ा वैराग्य हुआ। ये उसी समय दीक्षित हो गये।'

सुनकर दोनों भाई पुण्ड्रवर्धनपुर पहुँचे। नागकुमार के दर्शन से वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उसके पास रहने की उससे प्रार्थना की। नागकुमार ने उन्हें अपने पास रख लिए।

कुमार को वहाँ रहते-रहते कई दिन हो गये। वह वहाँ उक्ता गया। उसे अन्यत्र जाने की इच्छा हुई। वह जयवर्मा से आज्ञा लेकर वहाँ से चल दिया। रास्ते में उसे एक जालांतिक नाम का वन पड़ा। वह शान्ति पाने की इच्छा से कुछ देर के लिए वहाँ ठहर गया। जब से वह चला था, उसने कुछ खाया नहीं था। इसलिए वहाँ वह भूख से आतुर हो उठा। बगीचे में कुछ वृक्षों पर खूब फल लगे हुए थे, परन्तु वे थे विषफल। नागकुमार को यह बात मालूम न थी, इसलिए उसने अपने साथियों के साथ वे फल खा लिए। उसके पुण्य से उसे कुछ भी हानि न हुई।

इतने में दो योद्धा नागकुमार के पास आए। उनके नाम सहस्र भट थे। उन्होंने नागकुमार को बड़े विनय से नमस्कार किया और वे बोले - हम बहुत समय से आपकी राह देख रहे हैं। आपके आज दर्शन हुए, इसकी हमें बड़ी खुशी है। नागकुमार ने कहा - किसलिए आप मेरी ओर देख रहे थे?

वे बोले - हमने एक दिन एक मुनि से पूछा था कि हमारा मालिक कौन होगा? तब मुनि ने कहा था कि जो जालान्तिक

वन में आकर ठहरेगा और उसके वृक्षों के विषफल खायेगा, वही तुम्हारा मालिक होगा। वह हाल हमने अपनी आँखों से आज देख पाया। आप हमें अपने दास होने की आज्ञा दीजिए। इतना कहकर वे पास ही के शहर में पहुँचे। वहाँ के राजा सिंहरथ को उन्होंने नागकुमार के आने की खबर की। वह वहाँ आया और नागकुमार को अपने महल लिवा ले गया।

नागकुमार सिंहरथ के अधिक आग्रह से कुछ दिनों के लिए वहीं ठहरा रहा।

एक दिन सिंहरथ राजसभा में बैठा हुआ था, इसमें एक मनुष्य ने आकर उसे एक पत्र दिया उसमें लिखा था–

'सिन्धुदेश का राजा चन्द्रप्रद्योतन मेरी पुत्री से अपना विवाह करने के लिए मुझे बाध्य कर रहा है। और मैंने उस ब्याह नागकुमार के साथ करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। मैंने इस लिए उसे इन्कार लिख भेजा था। वह इससे रुष्ट होकर मेरे पर चढ़ आया है और कहता है कि यदि तुम अपनी कुमारी का विवाह मुझसे न करोगे तो तुम्हारे राज्य का रहना भी कठिन होगा।'

आप मेरे परम मित्र हैं। आपसे अपना हाल कहना मेरा कर्तव्य है। मैं आशा करता हूँ कि आप यहाँ आकर मुझे सहायता देंगे। मैं आपका बड़ा आभारी होऊँगा।

आपका दर्शनाभिलाषी –
हरिवर्मा।

पत्र वांचकर उसने नागकुमार से कहा – मेरे मित्र का पत्र

आया है। उसका एक बड़ा जरूरी काम है। इसलिए मैं वहाँ जाता हूँ। आप तबतक यहीं ठहरें। मैं बहुत जल्दी लौटूँगा।

नागकुमार ने कहा ऐसा क्या काम है जिसके लिये आप इतनी शीघ्र करते हैं। यदि कोई खास बात न हो तो कहिए। सिंहरथ ने हरिवर्मा का पत्र नागकुमार को दे दिया। वह पढ़कर बोला – यह चन्द्रप्रद्योतन कौन है?

सिंहरथ ने कहा – सौराष्ट्रदेश में गिरिनगर नाम का शहर है। उसी का वह राजा है। उसकी रानी का नाम मृगलोचनी है। उनकी पुत्री गुणवती बड़ी खूबसूरत और विदुषी है। उसी के लिए चन्द्रप्रद्योतन झगड़ा कर रहा है। बाकी हाल तुम पत्र में पढ़ ही चुके हो।

नागकुमार ने कहा – अच्छी बात है। मैं भी आप ही के साथ चलता हूँ। देखूं तो वह कैसा बली है? दूसरे यह भी है कि आपके बिना मेरा यहाँ दिल भी नहीं लगेगा। वे दोनों वहाँ से रवाना होकर गिरिनगर जा पहुँचे।

चन्द्रप्रद्योतन को जब उनके आने का हाल मालूम हुआ और उन्हें युद्ध के लिए उसने तैयार देखे, तब उसने भी अपने दो वीरों को, जिनके नाम जय और विजय थे, युद्ध के लिए भेजे। वे लड़ने लगे। उधर नागकुमार ने अपने अछेद्य और अभेद्य वीरों को लड़ने की आज्ञा की। दोनों ओर के योद्धा खूब जी झोंककर लड़े, परन्तु आखिर में विजयलक्ष्मी ने वरमाला नागकुमार के वीरों के गले में डाली। उन्होंने चन्द्रप्रद्योतन के वीरों को बाँधकर नागकुमार के पास पहुँचा दिये।

चन्द्रप्रद्योतन को जब यह हाल मालूम पड़ा और शत्रुसेना में व्याल और अलेद्य अभेद्य आदि बड़े-बड़े शूरवीरों को लड़ने के लिए सन्नद्ध देखे, तब वह स्वयं उनसे लड़ने के लिए युद्धभूमि में उतरा। उसने अपनी सेना में व्यूह रचना की और उसे योग्य स्थान में नियुक्त कर वह लड़ने लगा।

चन्द्रप्रद्योतन ने सब कुछ किया तब भी उसे विजयलक्ष्मी, इस भय से कि संसार मुझे व्यभिचारिणी कहेगा, उसके पास न गई और जहाँ पहले गई थी वहीं बनी रही। नागकुमार के वीरों ने प्रद्योतन को बाँधकर उसे अपने मालिक के पास पहुँचा दिया। नागकुमार ने उसे हरिवर्मा के सुपुर्द कर दिया। उसने उसे अपने कैदखाने में डलवा दिया।

नागकुमार की आकस्मिक सहायता से हरिवर्मा बड़ा प्रसन्न हुआ। वह बोला - आपने इस समय जो मेरा आशातीत उपकार किया है, उसका बदला चुकाना मेरे लिए असम्भव है। परन्तु फिर भी मैं अपनी कुमारी का आपके साथ विवाह करके आपकी यत्किंचित् सेवा करना चाहता हूँ। आप मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिए। इसके बाद उसने अच्छे दिन में अपनी राजकुमारी को ब्याह कुमार के साथ बड़े ठाट बाट से कर दिया।

नागकुमार कुछ दिनों तक वहाँ ठहरा। इसके बाद वह नेमिनाथ भगवान की यात्रा के लिए गिरनार गया। भक्तिभाव से उसने पर्वत की यात्राकर शान्ति प्राप्त की। उसे पर्वत का प्राकृतिक सौन्दर्य देखकर बड़ा आनन्द हुआ।

इस समय कौशाम्बी का राजा शुभचन्द्र था। उसकी रानी का नाम था सुभावती। इसके सात पुत्रियाँ थीं। उनके नाम थे– स्वयंप्रभा, सुप्रभा, कनकप्रभा, स्वर्णमाला, नन्दा, पद्मश्री और नागदत्ता।

एक रत्नसंचय नाम का शहर था। उसका राजा मेघवाहन विद्याधर था। मेघवाहन ने सुकण्ठ नाम के राजा को उसकी राजधानी से निकाल दिया और उस पर अपना अधिकार कर लिया। सुकण्ठ ने कौशाम्बी के पास एक शहर बसाया। उसका नाम उसने अलंघ्यपुर रखा। वह वहीं बड़े आनन्द से रहने लगा।

एक दिन शुभचन्द्र की पुत्रियाँ कहीं जा रही थीं। सुकण्ठ ने उन्हें देख लिया। उनकी रूपमधुरिमा देखकर वह उनकी प्राप्ति के लिए आतुर हो उठा। उसने उनके लिए उनके पिता से प्रार्थना की। परन्तु शुभचन्द्र ने उसकी प्रार्थना पर कुछ ध्यान न दिया। शुभचन्द्र की इस लापरवाही से उसे बड़ा क्रोध आया। क्रोध से वह अन्धा बन गया। उसने लाभालाभ का कुछ विचार न कर शुभचन्द्र को मरवा डाला और सातों कन्याओं को पकड़ मँगवाया। उसने उनसे विवाह के लिए आग्रह किया। सातों ने मिलकर बड़ी निर्भीकता से उसे कह दिया – पापी! तूने हमारे पिता को तो मरवा ही डाला है, अब तू हमारा कुछ भी कर, किन्तु हम तेरे साथ कभी ब्याह न करेंगीं। हम आज दृढ़ संकल्प करती हैं कि हम उसी वीरयुवा को अपनायेंगी– अपने पवित्र हृदय में उसे जगह देंगी – जो तुझे मारकर हमारे पिता का बदला लेगा। नहीं तो आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर ही जीवन बितायेंगी परन्तु तुझसे चाण्डाल का तो कभी

स्पर्श भी न करेंगीं। स्पर्श तो दूर रहे, कभी तेरा मुख भी न देखेंगीं। सुकण्ठ को इनके कठोर वचनों से गुस्सा तो बहुत आया, परन्तु वह उसे बर्दाश्त कर गया। उसने विचारा कि – स्त्री जाति का गुस्सा तात्कालिक ही बहुत होता है, फिर वे धीरे–धीरे, जबकि उनके लिए कुछ गति नहीं होती है, तब सहज ही कर सब कुछ करने लगती हैं। ये तो अभी लड़कियाँ हैं। कहाँ तक इतनी दृढ़ रह सकेंगी? आज नहीं कल, कल न सही परसों, अगत्या एक न एक दिन मेरे ही तो पावों पर वे गिरेंगीं और मुझसे अपने जीवन की भिक्षा मांगेगीं। तब अभी क्यों उनसे जबरदस्ती करूँ? अभी तो इनका कैद में डलवा देना ही अच्छा है। जिससे इन्हें अपने कर्तव्य का ज्ञान हो और ये अपनी गलती पर पश्चाताप करें। ऐसा समझकर सुकण्ठ ने उन्हें जेलखाने में ठोंस दिया।

वे वहीं रहने लगीं। उन्हें रहते कुछ दिन बीत गये। जब दैव की मनुष्य पर कृपा होती है, तब उन्हें कठिन से कठिन दु:ख से भी छुट्टी मिल जाती है। इनके लिए भी ऐसा ही हुआ। एक दिन की बात है कि इनकी सबसे छोटी बहन नागदत्ता संयोगवश जेलखाने से निकल भागी। वह वहाँ से जाकर एक आर्यिकाश्रम में पहुँची। वहाँ कुछ दिन ठहरी। हस्तिनापुर का राजा अभिचन्द्र शुभचन्द्र का भाई था। नागदत्ता ने उसके पास पहुँचकर अपने पिता के मारे जाने का और अपनी बहनों को कैदखाने में डाल देने का सब हाल उससे कह सुनाया। अभिचन्द्र को सुकण्ठ के इस अन्याय पर बड़ा गुस्सा आया। उसने उसी वक्त पत्र लिखकर नागकुमार को गिरनार से बुलाया और उससे सब घटना कह सुनाई।

नागकुमार इस विषय की सलाह लेने को अपने मामा के पास गया।

इसके बाद नागकुमार और अभिचन्द्र शुभचन्द्र की राजधानी में गये। वहाँ से उन्होंने सुकण्ठ के पास दूत भेजा। उसने नागकुमार के कहे माफिक सब हाल सुकण्ठ से कहा। उसे सुनकर सुकण्ठ क्रोध में आकर बोला – मैं उन कन्याओं को हरगिज नहीं छोड़ सकता। जान पड़ता है तेरे मालिक को काल–सर्प ने–डसा है। इसीलिए वह मुझपर शासन करना चाहता है। जाओ! जाओ!! उससे कह दो कि, यदि हिम्मत हो तो युद्धभूमि में उतरे और फिर कन्याओं के लेने का हौश करे।

दूत के द्वारा उसे युद्ध के लिए तैयार सुनकर नागकुमार भी युद्धभूमि में पहुँचा। उसने अपनी सब विद्याओं को भी बुलवाई।

दोनों ओर से भयंकर युद्ध का सूत्रपात हुआ। दोनों ओर के योद्धा जी झोंककर लड़ने लगे। आखिर कुमार ने अपने चन्द्रहास खड्ग द्वारा सुकण्ठ का सिर काट दिया।

सुकण्ठ का एक पुत्र था। उसका नाम वज्रकण्ठ था। वज्रकण्ठ नागकुमार की शरण गया और उसे बड़े उत्साह के साथ अपने शहर में लाया। इसके बाद अपनी छोटी बहन रुक्मणी का ब्याह उसने नागकुमार से कर दिया। इसके अतिरिक्त नागकुमार ने शुभचन्द की सातों कन्याओं को और अभिचनद्र की चन्द्रप्रभा नाम की राजकुमारी को और ब्याही। वह अब कुछ दिनों के लिए हस्तिनापुर में ठहर गया। वहाँ अपनी प्रियाओं के साथ वह आनन्द से रहने लगा।

***

पाण्डुदेश के अन्तर्गत एक मधुरापुरी थी। उसका राजा मेघवाहन था। उसकी रानी का नाम था जयलक्ष्मी। उनके श्रीमती नाम की पुत्री थी। उसने प्रतिज्ञा की थी कि – जो मुझे नृत्य करते वक्त मधुर मृदंगध्वनि के द्वारा मेरा मन मुग्ध कर सकेगा, वही मेरा स्वामी हो सकेगा।

जयलक्ष्मी की धाय के भी एक लड़की थी। उसका नाम कामलता था। वह अपना ब्याह ही करना नहीं चाहती थी। यह सुनकर महाव्याल वहाँ आया।

एक दिन मेघवाहन के भानजे ने आकर कामलता के लिए अपने मामा से प्रार्थना की। मेघवाहन ने उसे दे भी दी। वह उसे ब्याहने के लिए अपने शहर लिए जाता था। किन्तु कामलता उसे पसन्द नहीं करती थी। रास्ते में उसे महाव्याल दिख पड़ा। उसे देखते ही वह चिल्लाई और बोली – मेरी रक्षा कीजिए, मुझे बचाइए। महाव्याल ने कामांक से कहा – इस बेचारी के साथ क्यों जबरदस्ती की जा रही है? इसे छोड़ते क्यों नहीं?

कामांक बोला – मैं इसे छोड़ सकता हूँ; परन्तु इस शर्त पर कि यदि तुम इसे न ब्याहो। इसके सिवा मैं इसे नहीं छोड़ सकता।

महाव्याल ने कहा – हाँ, यह हो सकता है कि मैं स्वयं अपनी इच्छा से इसके साथ ब्याह न करूँ। परन्तु इसकी इच्छा का मैं बाधक नहीं हो सकता। अर्थात् – इसकी इच्छा मेरे साथ विवाह करने की होने पर मैं इन्कार नहीं कर सकूँगा।

कामांक ने कहा – नहीं, तुम्हें यह भी शर्त करनी पड़ेगी कि

इसकी इच्छा होने पर भी मैं इसे न ब्याहूँगा।

महाव्याल बोला – इसके लिए मैं तुम्हारा बाध्य नहीं।

कामांक ने कहा – तब मैं भी इसे न छोड़ूँगा।

महाव्याल बोला – तुम्हें छोड़ना होगा।

महाव्याल ने जब देखा कि इतने समझाने पर भी यह रास्ते पर नहीं आता, तब इसका इसे कुछ फल भी दिखाना चाहिए। यह विचार कर वह बोला – या तो तुम्हें इस छोड़ देना चाहिए, नहीं तो मुझे जबरन तुम पर आक्रमण करके इसकी रक्षा करनी होगी। मैं अपनी आँखों से यह बलात्कार नहीं देख सकता। जब तुम्हें वह चाहती ही नहीं, तब तुम्हारी उस पर इतनी ज्यादती क्यों?

कामांक ने कहा – मैं तुम्हारी ऐसी थोथी धमकियों से डरनेवाला नहीं। तुममें हिम्मत हो तो छुड़ा लो, नहीं तो चलते बनो।

महाव्याल को आखिर अगत्या कामांक के विरुद्ध शस्त्र उठाना पड़ा। कामांक ने भी म्यान से तलवार खींची। दोनों की मुठभेड़ हो गई। दोनों ने अपनी कुशलता शस्त्र चलाने में खूब बतलाई। आखिर महाव्याल ने उसका सिर धड़ से अलग कर दिया।

मेघवाहन को जब यह खबर मिली, तब वह उसी समय वहाँ आकर महाव्याल को अपने महल लिवा ले गया और कामलता का ब्याह उसने उसके साथ कर दिया। महाव्याल सुखपूर्वक वहीं रहने लगा।

मधुरापुरी से महाव्याल उज्जयिनी आया। उस समय उसका राजा जयसेन था और उसकी रानी थी जयश्री। मेनका नाम की उनके एक पुत्री थी। महाव्याल ने मधुरा में सुना था, कि मेनका किसी को पसन्द नहीं करती। चाहे वह फिर कितना भी खूबसूरत क्यों न हो। महाव्याल उसकी प्रतिज्ञा सुनकर यहाँ आया है। जब महाव्याल बाजार में एक सुन्दर जगह बैठा हुआ था और उसके सौन्दर्य को देखने के लिए हजारों पुरुष इकट्ठे हो रहे थे, उसी समय मेनका भी उधर आ निकली। उसने लोगों की भीड़ देखकर पूछा कि ये लोग क्यों इकट्ठे हो रहे है? उसकी एक सहचरी ने कहा – कुमारी! एक बड़ा खूबसूरत युवा जो सुन्दरता में कामदेव से कम नहीं है, यहाँ बैठा हुआ है। उसी के देखने के लिए ये सब लोग इकट्ठे हो रहे हैं।

कुमारी ने कहा – देखूँ मैं भी वह कैसा है? कुमारी ने उसे देखा और एक व्यंग भरी हँसी हँसकर वह चल दी।

उसके इस तरह चले जाने से महाव्याल को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसे उसी समय मुनि के वचन याद हो आये। वह वहाँ से अपने बड़े भाई के पास हस्तिनापुर गया और अपने आने का कारण उसने उससे कह दिया। वह यह भी बोला कि जान पड़ता है तुम्हारा और मेरा स्वामी एक ही होगा। मुझे पूर्ण आशा है – मेनका नागकुमार को अवश्य पसन्द करेगी। कुमार का चित्रपट उसे दिखाना चाहिए। व्याल ने उसकी सलाह पसन्द की। भाई की सम्मति से महाव्याल कुमार का चित्रपट उज्जयिनी की राजकुमारी

के पास ले गया और वह उसे उसने दिखा दिया। कुमारी नागकुमार की रूपसुधा का परोक्ष पानकर भी बहुत सन्तुष्ट हुई। उसने अपना हृदय एकदम कुमार को दे डाला।

महाव्याल बड़े भाई को साथ लेकर नागकुमार के पास आया। नागकुमार ने व्याल से पूछा – यह कौन है? व्याल ने कहा – देव! ये मेरे छोटे भाई हैं। आप ही की सेवा के लिए यहाँ आये हैं। आप इन्हें अपनाइए। सुनकर कुमार को बड़ा हर्ष हुआ।

इसके बाद महाव्याल ने मेनका के सम्बन्ध की बात का प्रसंग छेड़ा। कुमार महाव्याल को साथ लेकर उज्जयिनी पहुँचा। जयसेन ने उसका बड़ा सत्कार किया और उसके साथ अपनी कुमारी को ब्याह दिया।

इसके बाद वह मधुरा आया और श्रीमती को अपने मृदंग बजाने के कौशल से मुग्धकर उसने उससे भी ब्याह कर लिया।

एक दिन एक साहूकार आया। उससे नागकुमार ने पूछा कि आपने तो बड़ी–बड़ी दूर की सफर की है, कहिए तो कुछ आश्चर्य की बात आपके देखने में आई?

वह बोला – कुमार! मैंने देखी तो अवश्य है, परन्तु उसका रहस्य मैं नहीं जान पाया। वह बात यह है – समुद्र के बीच के स्थल भाग में एक बड़ा रमणीय भूमितिलक नाम का नगर है। वहाँ एक जिनमन्दिर है। जब प्रतिदिन दोपहर का वक्त आता है, तब वहाँ बहुत सी बड़ी खूबसूरत लड़कियाँ रोया करती हैं। मैं नहीं कह सकता कि उनके रोने का कारण क्या है?

कुमार ने उसकी अचरज भरी बात सुनकर अपनी विद्याओं को स्मरण किया। विद्याएँ आईं और कुमार को उन्होंने उसके कहे माफिक स्थान पर ला पहुँचाया। कुमार पहले व्यालादि के साथ जिनमन्दिर गया। वह जब भगवान के दर्शन कर बाहर निकला, तब उसे सुनाई पड़ा –

'देवताओ, गन्धर्वों, यक्षो, राक्षसो, दानवों! तुम हमारी प्रार्थना सुनो। पापी वायुवेग ने हमें कैद कर रखी है और वह हमसे बलात् शादी करना चाहता है। तुम हमारी रक्षा करो! हम बड़ी दु:खदशा में सड़ रही हैं।'

सुनकर नागकुमार उनके पास पहुँचा। उसने उनसे पूछा – पूरा हाल अपना सुना जाओ। तुम किसी तरह की चिन्ता न करो। मेरे रहते तुम्हें कोई नहीं सता सकता।

उनमें से धरणिसुन्दरी ने कहा – हमारा पिता पृथ्वीतिलक शहर का राजा है। एक दिन हमारे मामा के लड़के वायुवेग ने पिताजी से कहा कि आप अपनी कुमारियों का विवाह मुझसे कर दीजिए। पिता उसके कुरूप को देखकर हँस पड़े। उन्होंने कहा – तुम पहले अपने रूप का संस्कार करके आओ, फिर देखा जायेगा। वह इतना कुरूप है कि उसे साधारण स्त्री भी नहीं चाहेगी और न उसमें कोई ऐसे गुण ही हैं, जिन्हें देखकर पिताजी उसके साथ हमें ब्याह देते।

पिताजी के कहने का उसके चित्त पर बुरा असर पड़ा। वह युद्ध करता, परन्तु युद्ध के लायक उसके पास कुछ साधन न था।

अगत्या पिताजी से बदला लेने के लिए उसने राक्षसी विद्याएँ सिद्ध कीं और उनके बल से उसने पिताजी को मरवा ड़ाला। इसके बाद उसने जबरन हमसे विवाह करना चाहा। हमने उससे कह दिया कि तू चाहे हमारी जान भी क्यों न ले, परन्तु हम उसी के साथ अपना ब्याह करेंगीं कि जो कि तेरा सिर काटकर हमारे पिता का बदला ले सकेगा।

वह बोला – खैर देखूँ संसार में मुझसा कौन बली है? इसलिए छह महीने की मैं तुम्हें मोहलत देता हूँ कि तुम तबतक मुझसा बली योद्धा लाकर मुझसे लड़ाओ। यदि वह मुझे जीत लेगा, तब तो मैं तुम्हें छोड़ ही दूँगा। अन्यथा तुम्हें जबरन मुझसे ब्याह करना होगा। यह कहकर उसने हमें कैदखाने में डाल रखा है। हमारे रक्ष और महारक्षक दो भाई हैं, उन्हें भी उसने कैद कर लिया है।

नागकुमार ने उनका वृत्तान्त सुना। उसे वायुवेग पर बड़ा क्रोध आया। पहले उसने उन बालिकाओं को छुड़ाकर उनकी रक्षा का भार अपने किसी आत्मीय को सौंपा। इसके बाद वह युद्ध के लिए तैयार हुआ। उसने वायुवेग को भी कहला भेजा कि मैंने तेरे पहरेदारों को मारकर मेघवाहन की सब लड़कियों को छुड़ा लिया है। तुझमें कुछ हिम्मत हो तो तू उन्हें मुझसे छीनकर ले जा।

वायुवेग नागकुमार की इस गुश्ताखी पर बड़ा बिगड़ा। उसने फौरन ही युद्ध का बाजा बजवाया और स्वयं बड़े दल बल से नागकुमार पर चढ़ आया। नागकुमार भी सजग था।

दोनों में घनघोर युद्ध आरम्भ हुआ। शस्त्रों की टक्कर से निरभ्र

बादल में भी बिजलियाँ इधर-उधर दौड़ने लगीं। पृथ्वी, हाथी और घोड़ों की भयंकर गर्जना और हिनहिनाहट से काँप उठी। युद्धभूमि ने विकराल रूप धारण किया। वीर पुरुष देवकन्याओं के सौन्दर्य सुधा की लालसा से-महत्त्वाकांक्षा से-जी तोड़कर लड़ने लगे। कई घण्टे युद्ध हुआ, परन्तु जयश्री ने तब तक किसी का भी हाथ न पकड़ा। यह देख वायुवेग ने गुस्से में आकर अपनी विद्या के जोर से जल बरसाना शुरु किया। नागकुमार ने उसे प्रचण्ड वायुवेग से हटाया। वायुवेग ने फिर अन्धकार कर दिया। नागकुमार ने चारों ओर प्रकाश फैला दिया। नागकुमार जितना-जितना उसके चलाए प्रयोगों को व्यर्थ करता जाता था, उतना ही वह खीज-खीजकर भयंकर प्रयोगों को काम में लाता था। अबकी उसने एक साथ जलप्रवाह छोड़ा। नागकुमार को उसके नष्ट करने को वाडवानल का प्रयोग करना पड़ा।

जब वायुवेग विद्याओं के प्रयोग द्वारा नागकुमार पर विजय न पा सका, तब उसे शस्त्र हाथ में उठाना पड़ा। वह खड्ग निकालकर नागकुमार का सिर काट लेने को झपटा। नागकुमार इतने समय तक तो केवल यह देखने के लिए - देखें वायुवेग में कितनी हिम्मत है, लड़ रहा था, परन्तु जब वायुवेग उस पर झपटा, तब उससे न रहा गया। उसने म्यान से तलवार निकालकर उसका सिर काट लिया। वायुवेग धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसकी सेना में हाहाकार मच गया। उसे जिधर से रास्ता मिला, वह उधर से भाग निकली। जयश्री ने नागकुमार को अपनाया।

इसके बाद वे सब बालिकाएँ कुमार से ब्याह दी गईं। कुमार, वायुवेग के राज्य को रक्ष और महारक्ष को सौंपकर वहाँ से चल दिया। रास्ते में उसे और भी बहुत योद्धा मिले। उन्होंने कुमार की दासवृत्ति स्वीकार की। कुमार ने उनसे उसका कारण पूछा, उन्होंने कहा – हमें एक मुनिराज ने यह कहा था कि – जो मेघवाहन की कन्याओं को ब्याहेगा, वही तुम्हारा स्वामी होगा; इसलिए हम आपकी सेवा में आये हैं।

कुमार वहाँ से कांचीपुर पहुँचा। वहाँ के राजा पल्लव ने उसकी अच्छी पाहुनगत की। कुमार कुछ दिन वहाँ ठहरकर आगे बढ़ा। रास्ते में उसे दंतिपुर मिला। उस समय उसका राजा चन्द्रगुप्त था। उसकी रानी का नाम चन्द्रमती था। उनके एक कन्या थी। उसका नाम था मदनमंजूषा। चन्द्रगुप्त ने नागकुमार को एक तेजस्वी और बुद्धिमान राजकुमार देखकर उसके साथ अपनी प्रिय पुत्री का ब्याह कर दिया।

इसके बाद – कुमार की खूब प्रसिद्धि सुनकर त्रिलोकतिलक शहर के राजा विजयंधर ने भी अपनी कुमारी श्रीमती का ब्याह बड़े उत्साह के साथ नागकुमार से कर दिया।

नागकुमार श्रीमती से ब्याह कर कुछ दिन वहीं ठहरा रहा। वहीं वह आनन्द से अपने सुख के दिन बिताने लगा। इसी बीच में वहाँ पिहिताश्रव मुनि आये। नागकुमार उनकी वन्दना के लिए गया। उन्हें नमस्कार कर उसने उनसे श्रावकधर्म का स्वरूप पूछा। मुनि ने उसे जो उपदेश दिया, उसका सार पाँचवें परिच्छेद में पढ़िए।

***

पाँचवाँ परिच्छेद

जैसे जड़ें वृक्ष की मजबूती की कारण होती हैं और मकान की नींव उसके दृढ़ता की कारण होती है, उसी तरह सम्यक्त्व सब व्रतों की दृढ़ता का कारण है।

सम्यक्त्व – देव, गुरु, शास्त्र अथवा तत्त्वों के श्रद्धान करने को कहते हैं।

देव – वह होना चाहिए जिसमें क्षुधा, तृषा, जरा, रोग, जन्म, भय, अभिमान, राग, द्वेष, चिन्ता, रति, अरति, शोक आदि दोष न हों, जो वीतरागी हो और हित का उपदेश करनेवाला हो।

गुरु – वह कहलाता है जो विषयों की आशा से मुक्त हो, निरारम्भी हो, जिसके पास किसी प्रकार का परिग्रह–धन, सम्पत्ति, चाँदी, सोना, घर, बाग–बगीचा न हो और जो निरन्तर ज्ञानाभ्यास, तपश्चर्या में मग्न रहता हो।

शास्त्र – वह सच्चा है, जिसमें जीवों की रक्षा का उपदेश दिया गया हो। जिसके प्रकरणों में कहीं परस्पर में विरोध न आता हो और विरागी महात्माओं द्वारा दूसरे के हित की कामना से जिसका निर्माण हुआ हो।

तत्त्व सात हैं –

जीव – जो चेतनामय हो।

अजीव – जिसमें चेतना न हो।

आस्रव – कर्मों के आने का जो रास्ता हो।

बन्ध – आत्मा और कर्मों के प्रदेशों का परस्पर में एक क्षेत्रावगाह होना।

संवर – कर्मों के आने के रास्ते का बन्द होना।

निर्जरा – कर्मों का एक देश क्षय होना।

मोक्ष – सब कर्मों का नष्ट हो जाना।

सम्यक्त्व के दश भेद हैं –

आज्ञासम्यक्त्व – वीतराग भगवान के वचनों पर श्रद्धान करना।

मार्गसम्यक्त्व – मोक्षमार्ग का बाह्याभ्यन्तर परिग्रह रहित श्रद्धान करना।

उपदेशसम्यक्त्व – त्रेसठ शलाका के पुरुषों का पवित्र चरित्र सुनकर श्रद्धान करना।

सूत्रसम्यक्त्व – मुनियों की आचरण विधि सुनकर श्रद्धान करना।

बीजसम्यक्त्व – बीजगणित आदि करणानुयोग के ग्रन्थ सुनकर श्रद्धान करना।

संक्षेपसम्यक्त्व – पदार्थों के संक्षिप्त स्वरूप को जानकर श्रद्धान करना।

विस्तारसम्यक्त्व – द्वादशांग शास्त्र को सुनकर श्रद्धान करना।

अर्थसम्यक्त्व – जैन शास्त्रों के किसी एक वाक्य को जानकर श्रद्धान करना।

अवगाढ़सम्यक्त्व – अंग और अंगबाह्य शास्त्र को जानकर श्रद्धान करना। यह सम्यक्त्व श्रुतकेवली के होता है।

परमावगाढ़सम्यक्त्व – केवलज्ञान के द्वारा पदार्थों को जानकर श्रद्धान करना। यह सम्यक्त्व केवली भगवान के होता है।

श्रावकों के आठ मूलगुण–

मद्य – एक अपवित्र वस्तु है। उसके पीने से ज्ञान नष्ट होता है। शराबी पुरुष जब नशे में मत्त होता है, तब उसे लोकलाज धर्म–कर्म आदि का कुछ भान नहीं रहता। वह उस समय बुरा से बुरा काम करने पर उतर आता है। उसे यह भी भान नहीं रहता कि कौन तो मेरी माता है? कौन बहन है? कौन स्त्री है? कौन लड़की है? वह सबको एकसा देखकर उनके साथ अपनी बुरी वासनाओं के सफल करने के लिए छटपटाता है। शराबी जब शराब पीकर चलता है, तब उसकी बड़ी बुरी हालत हो जाती है। उसके पाँव कहीं के कहीं गिरते हैं। वह अपने को बिल्कुल भूल जाता है। नशे में उसे कुछ सुधि नहीं रहती। वह चक्कर खाकर गिर भी पड़ता है। लोग उसकी दिल्लगी उड़ाते हैं। कुत्ते उसके मुँह में मूतते हैं। मतलब यह कि शराबी की सब तरह दुर्दशा होती है। इसलिए जो बुद्धिमान हैं उन्हें न केवल शराब–मद्य ही किन्तु नशे नाम का परित्याग करना चाहिए।

माँस – बड़ा घृणित पदार्थ है। उसके तो देखने मात्र से घृणा–

नफरत–पैदा होती है, उल्टी होने लगती है। न जाने लोग उसे कैसे खा लेते हैं? उनका हृदय बड़ा निर्दयी और कठोर है। माँस जीवों की हिंसा से पैदा होता है और जीवमय होता है। निर्दयी मनुष्य निरपराध पशुओं को मारते हैं और फिर उन्हें पकाकर खाते हैं। बड़ा अचम्भा होता है कि जब उन्हें किसी तरह की तकलीफ होती है अथवा उनके हाथपाँवों में काँटा या चाकू लग जाता है, तब तो वे बड़े दु:खी होते हैं–तड़पने लगते हैं–फिर न जाने क्यों उन्हें बुद्धि नहीं होती कि दूसरे जीवों के गले पर छुरी फेरने से उन्हें भी बेहद कष्ट होता होगा। परन्तु वे अपनी नीच लालसा को–घृणित जीभ के स्वाद को–अच्छा समझकर ऐसे राक्षसी कार्यों का करना बुरा नहीं समझते। अपने बच्चे कुछ देर के लिए कहीं खो जावें, तब तो वे आतुर हो उठते हैं, उनके घरों में रोना–धेना मच जाता है, हा–हाकार के मारे वे जमीन आसमान को एक कर डालते हैं और बेचारे निरपराध दीन पशुओं को बिल–बिलाते छोड़कर उनके बाल–बच्चों को वे सदा के लिए उनसे बिछुड़ा देते हैं – निर्दयी होकर अपनी तीक्ष्ण तलवार या छुरी से उनके गले काट डालते हैं – तब उन्हें कुछ दु:ख नहीं होता। कैसा राक्षसी काम! वे मलमूत्र आदि वस्तुओं से घृणा करते हैं–पर न जाने फिर क्यों वे जहाँ पैदा होती हैं–जो मलमूत्रमय ही है, उसे वे खा डालते हैं?

बहुत से माँस खानेवाले यह कहा करते हैं – **'जीवो जीवस्य जीवनम्'** अर्थात् जीव, जीव का जीवन है–रक्षक है। परन्तु यह उनकी गलती है। जीव का प्राकृतिक जीवन–आहार–फलादिक हैं। जिनके खाने से किसी प्रकार की क्रूरता न आकर प्राकृतिक

शान्ति बनी रहती है। माँस खानेवाले क्रूर और निर्दयी होते हैं, इसलिए उनमें स्वाभाविक शान्ति नहीं होती।

जीभ के लोलुपी लोग माँस को चाहे कैसा ही बतावें, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि संसार में उससे बुरी और घृणित वस्तु कोई नहीं है। जिनके हृदय में दया होती है, जो दु:ख-कष्ट-को अपने और दूसरों के समान तकलीफ का हेतु समझते हैं, वे तो कभी हरगिज माँस नहीं खायेंगे और जिनकी मनुष्यदशा में भी राक्षसी प्रकृति है, उनके लिए तो कहना ही क्या है? जब उनमें मनुष्याव ही नहीं, तब उन्हें कहा ही क्या जाये? परन्तु बुद्धिमानों को माँस खाना उचित नहीं।

मधु – शहद भी अपवित्र है। उसमें सूक्ष्म-सूक्ष्म अनन्त जन्तु होते हैं। उनकी रक्षा नहीं हो सकती। इसलिए उसके खानेवाले को पापबन्ध होता है। उसकी पैदायश जीवों की बिना हिंसा के नहीं हो पाती और वह है भी केवल जीवों का उच्छिष्ट। इसलिए दयालु पुरुषों को शहद खाना उचित नहीं।

अहिंसाणुव्रत – जीवों की हिंसा के छोड़ने को कहते हैं। जैनधर्म की भित्ति इसी अहिंसाव्रत पर निर्भर है। और इसी की वृद्धि, रक्षा के लिए और झूठ, चोरी, आदि पापों को छोड़ने का उपदेश दिया गया है। जैनधर्म कहता है - चाहे छोटा जीव हो, चाहे बड़ा, परन्तु उसकी जान-बूझकर अथवा कषायों से कभी हिंसा न करो। तुम्हें कोई धन देता हो, या राज्य भी मिलता हो, तब भी उसे पाँव की ठोकर से लुढ़का दो, परन्तु दूसरों को कभी तकलीफ न दो।

सत्याणुव्रत – झूठ के छोड़ने को कहते हैं। अर्थात् इस व्रत के पालन करनेवाले को सदा सत्य बोलना चाहिए। परन्तु ऐसा सत्य बोलना भी उचित नहीं, जिससे निष्कारण दूसरे के प्राण जाते हों या उसे कष्ट होता हो।

अचौर्याणुव्रत – कहीं रखे हुए, रास्ते में पड़े हुए, भूले हुए, दूसरे की वस्तु को न लेने को कहते हैं। ऐसी वस्तुएँ न तो स्वयं ही लेनी चाहिए और न उठाकर दूसरे को दे देनी चाहिए।

ब्रह्मचर्याणुव्रत – परस्त्रियों को छोड़ने और स्वस्त्री से सन्तोष करने को कहते हैं। ब्रह्मचर्य मनुष्य-जीवन का भूषण है। जिसमें ब्रह्मचर्य नहीं, वह मनुष्य मनुष्यत्व से रहित है। जबतक पूर्ण ब्रह्मचर्य के पालन की शक्ति न हो, तबतक परस्त्रियों से, उनके एकान्त संवास से और एकान्त में उनके साथ सम्भाषणादि करने से बचकर स्वदार सन्तोषव्रत पालना चाहिए। गृहस्थों के लिए यही ब्रह्मचर्यव्रत है। वे इसे जब साध लेंगे, इसमें अटल हो जायेंगे, तब उन्हें ऊपर चढ़ने को भी कठिनाई न पड़ेगी। इसलिए सदा अपने अभ्यास को बढ़ाने के लिए और पाप से बचने के लिए ब्रह्मचर्याणुव्रत का पालन करना आवश्यक है।

परिग्रहपरिमाणव्रत – धन, धान्य, सुवर्ण, चाँदी, दास, दासी आदि दस प्रकार के परिग्रह के परिमाण-मर्यादा-करने को कहते हैं। जितनी तृष्णा अधिक बढ़ती है, उतना ही अधिक अनर्थ भी होता है। इसलिए तृष्णा को घटाने और सन्तोष को बढ़ाने के लिए परिग्रहपरिमाणव्रत धारण करना आवश्यक है।

शील सात हैं –

दिग्व्रत – दिशा की मर्यादा के भीतर इतने योजन तक वा अमुक पर्वत, अमुक समुद्र वा नदी तक जाने की मर्यादा करने को कहते हैं।

अनर्थदण्डव्रत – पाप का उपदेश देना, हिंसा के उपकरण छुरी, चाकू आदि का दान देना, दूसरों का बुरा विचारना, हिंसा के पुष्ट करनेवाले वा राग के बढ़ानेवाले शास्त्रों का सुनना और बिना प्रयोजन भूमि का खोदना जल ढोलना, वनस्पति तोड़ना, ये सब अनर्थदण्ड कहलाते हैं, इन्हें छोड़ना चाहिए।

भोगोपभोगपरिमाणव्रत – भोग वह है जो एक ही बार उपयोग में आये। जैसे – भोजन आदि। उपभोग वह है जो बार-बार उपयोग में आये। जैसे, भूषण, वस्त्र आदि।

ऐसे पदार्थों के सेवन का **नियम** – महीना, दो महीना, छह महीना, वर्ष आदि की मर्यादा के लिए, या **यम** – जीवनभर की मर्यादा के लिए परिमाण करने को भोगोपभोगपरिमाणव्रत कहते हैं।

शिक्षाव्रत चार हैं –

देशावकाशिकशिक्षाव्रत – काल की मर्यादा लिए पाँच अणुव्रत का प्रतिदिन संकोच करने को कहते हैं। अर्थात् पहले ग्रहण किए हुए अणुव्रतों में काल की अवधि को लेकर प्रतिदिन कमी करने को देशावकाशिकशिक्षाव्रत कहते हैं।

सामायिकशिक्षाव्रत – किसी नियत समयपर्यन्त पाँचों

पापों के सम्पूर्णपने छोड़ने को कहते हैं। सामायिक करते समय एकान्त स्थान जैसे वन, जिनालय अथवा और कोई निरुपद्रव स्थान होना चाहिए। सामायिक करनेवाले को उचित है कि वह शरीर मन, वचन की चेष्टा को सब ओर से रोककर बड़ी निश्चलता से सामायिक करे। सामायिक का मतलब ही यह है कि परिणामों में समता पैदा हो। उस समय किसी प्रकार का उपद्रव भी यदि आये तो फिर चलचित्त न होकर उसे बड़ी धीरता से सह लेना चाहिए।

प्रोषधोपवासशिक्षाव्रत – अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्व तिथियों में इच्छापूर्वक चार प्रकार के आहार का त्याग करने को कहते हैं। उपवास के दिन पाँच पाप, आरम्भ, स्नानादि न करना चाहिए। और सारा दिन बड़ी शान्ति से धर्म श्रवणादि में बिताना चाहिए।

वैयावृत्यशिक्षाव्रत – पात्रों के लिए दान देने को कहते हैं। पात्रों का विवेचन पहले किया जा चुका है। पात्रदान में विशेष यह बात होनी चाहिए कि वह दान निरपेक्षभाव से दिया जाये। इसके अतिरिक्त संयमियों की सेवा करना, उनकी तकलीफें दूर करना, अर्थात् उनका अपने से जितना उपकार किया जा सके उतना करना, यह सब वैयावृत्य नामक शिक्षाव्रत है।

इसके अतिरिक्त कुछ और भी गृहस्थों के लिए आवश्यक बातें हैं –

पाँच उदम्बर फल–बड़, पीपलफल, ऊमर, कठूमर (अंजीर)

पाकरफल और आचार (अथाना) पुष्पशाक, बेल (बिल्व-बील) और मक्खन आदि वस्तुएँ छोड़ने योग्य हैं। वे फल आदि भी नहीं खाने चाहिए, जिनसे हिंसा बहुत होती हो और जो अनुपसेव्य - खानेयोग्य न हों।

पानी छानकर पीना चाहिए। पानी छानने का छन्ना (गन्ना) छत्तीस अंगुल लम्बा और चौबीस अंगुल चौड़ा होना चाहिए। पानी दोहरा छन्ने से छानना चाहिए।

माँस, खून, गीला चमड़ा, हड्डी, पीप और मरे हुए शरीर को देखकर भोजन छोड़ देना चाहिए। फिर खाना उचित नहीं।

भोजन सदा मौनसहित करना चाहिए। मौन रखने से ज्ञान का विनय होता है और अपने अभिमान की रक्षा भी होती है।

रात में भोजन नहीं करना चाहिए। क्योंकि रात में जीमनेवालों के अहिंसाणुव्रत का पालन नहीं हो सकता। इससे अधिक और क्या कहा जा सकता है।

माँस, मद्य, और मधु के खानेवाले नरकों में जाते हैं। क्योंकि वे जीवों की हिंसा द्वारा बहुत तीव्र पापबन्ध करते हैं। वहाँ पलक उठाने मात्र भी उन्हें सुख नहीं मिलता। नारकियों की उत्कृष्ट आयु तैतीस सागर की होती है। जिस नरक में जितनी आयु होती है, वह पूरी भोगनी पड़ती है। बीच में उनकी मृत्यु नहीं होती। नरक की आयु पूर्ण कर वह जब मनुष्यभव आदि में आता है, तब भी वह रोगी, दरिद्री, कुबड़ा, लँगड़ा, लूला, जन्मान्ध, कोढ़ी, वामन, कुरूप आदि ही होता है।

और जो माँस, मद्य आदि नहीं खाते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं। वहाँ वे देवकन्याओं के साथ खूब सुख भोगते हैं। वहाँ से अपनी आयु पूर्ण कर मनुष्य पर्याय में अच्छे कुल में उत्पन्न होते हैं। वे अच्छे तेजस्वी होते हैं, खूब धनी होते हैं और पुण्यवान होते हैं।

श्रावकों की ग्यारह श्रेणियाँ-प्रतिमा होती हैं। वे इसलिए कि उनके धारक क्रम-क्रम से अपनी उन्नति करते चले जायें और धीरे-धीरे संसार से विरक्त-उदासीन होकर आत्मकल्याण के लिये सच्चा मार्ग-मुनिपद-अंगीकार कर सकें।

दर्शनप्रतिमा, शुद्ध-निर्दोष सम्यग्दर्शन के पालन करने को, संसार, शरीर, भोग-विलासादि से विरक्त होने को, सप्तव्यसन, पाँच उदुम्बर फल के छोड़ने को, पंच परमेष्ठी का शरण ग्रहण करने को और तत्त्वपथ-सच्चेमार्ग के ग्रहण करने को कहते हैं।

व्रतप्रतिमा – पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत के निरतिचार पालन करने को कहते हैं।

सामायिकप्रतिमा – स्नानादि से शुद्ध होकर जिनमन्दिर में वा और किसी पवित्र स्थान में खड्गासन होकर या पद्मासन बैठकर त्रिकाल, मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक पंच परमेष्ठी के नमस्कार करने को, या उनके स्वरूप का चिन्तवन करने को, अथवा अपने आत्मस्वरूप के विचारने को कहते हैं।

प्रोषधोपवासप्रतिमा – अपनी शक्ति को न छिपाकर अष्टमी और चतुर्दशी को नियमपूर्वक प्रोषधोपवास करने को कहते हैं। इस दिन सब समय ध्यानाध्यनादि में बिताना चाहिए।

सचित्तत्यागप्रतिमा – मूल, फल, शाक, कन्द, फूल, बीज आदि सचित्त वस्तुओं के न खाने को कहते हैं।

रात्रिभोजनत्यागप्रतिमा – चार प्रकार के आहार का – अन्न, पीनेयोग्य, स्वाद लेनेयोग्य और चाटनेयोग्य पदार्थों का – रात्रि में त्याग करने को कहते हैं।

ब्रह्मचर्यप्रतिमा – शरीर को मल–मूत्रादि अपवित्र वस्तुओं के उत्पत्ति का स्थान, और उनका कारण, दुर्गन्धित, ग्लानि का कारण तथा मलप्रवाही – जिससे प्रतिसमय मल निकलता रहता है – ऐसा समझकर काम से विरक्त होने को–कामवासना के नष्ट कर देने को कहते हैं।

आरम्भत्यागप्रतिमा – नौकरी, खेती करना, व्यापार करना आदि दस प्रकार के परिग्रह में मोह छोड़कर आत्मस्वरूप में तल्लीन और सन्तोषी–निराकुल–होने को कहते हैं।

अनुमतित्यागप्रतिमा – आरम्भ–खेती, व्यापार आदि, परिग्रह–धन, धान्य, सुवर्ण, दास, दासी आदि, ऐहिक–विवाह आदिक कामों में सम्मति न देने को कहते हैं।

उद्दिष्टत्यागप्रतिमा – अपने लिए – अपने उद्देश्य से – बनाये हुए भोजन के न करने को कहते हैं।

इस प्रतिमा के दो भेद हैं –

पहला – खण्डवस्त्र का रखनेवाला।

दूसरा – लंगोटमात्र रखकर पाणिपात्र से आहार करनेवाला।

इसके बाद मुनिधर्म ग्रहण किया जाता है।

आदि के छह प्रतिमाधारी जघन्यश्रावक कहलाते हैं। इससे आगे नववीं प्रतिमा तक मध्यम श्रावक कहलाते हैं और दसवीं तथा ग्यारहवीं प्रतिमावाले उत्कृष्ट श्रावक कहलाते हैं।

उक्त व्रतों का जो श्रावक निर्दोष पालन करते हैं और निरन्तर अपने आत्मा को पवित्र बनाने का प्रयत्न करते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं। और वहाँ से आकर मनुष्यभव द्वारा निर्वाण–मोक्ष–प्राप्त करते हैं। कुमार! यह पवित्र गृहस्थधर्म तुम्हें धारण करना चाहिए।

प्रभो! आपने मुझ पर बड़ा उपकार किया जो मुझे श्रावकधर्म के पवित्र उपदेश से परिचित किया। मुझे आपसे एक बात पूछनी है, आप उसके उत्तर देने की कृपा करें तो बहुत अनुग्रह हो।

वह यह कि – श्रीमती को जब मैंने देखा, तब उस पर मेरा बड़ा प्रेम हुआ। इस असामायिक और बिना परिचय के प्रेम का क्या कारण है?

मुनि बोले – मेरुपर्वत के उत्तर की ओर वीतशोक नामक एक शहर था। उसका राजा महेन्द्रविक्रम और उसकी प्रिया धनश्री थी। इनके एक पुत्र था। उसका नाम था नागदत्त। वहीं एक साहूकार था। उसका नाम वसुदत्त और उसकी पत्नी वसुमती थी। यही श्रीमती तब वसुदत्त नागवसु नाम की पुत्री थी। इसका ब्याह नागदत्त से हुआ था।

एक दिन वहाँ गुप्तमुनि आये। नागदत्त उनकी वन्दना के लिए गया। मुनि से धर्म का उपदेश सुनकर उसने पंचमी का व्रत ग्रहण

किया। उस दिन उपवास के कारण भाग्यवश उसे कुछ तकलीफ हो गई। उसकी बुरी हालत देखकर माता-पिता ने उससे कहा - पुत्र! देख तो अब उजेला हो गया है। तू उठ और भगवान के दर्शन कर आ। पीछे कुछ भोजन कर लेना, जिससे तेरी तबियत ठीक हो जायेगी। असल में थी तो तब भी रात ही, परन्तु माता-पिता से पुत्र का कष्ट न देखा गया, इसलिए उन्होंने पुत्र के शय्यागृह में कुछ छेद करवाकर और उनमें काँच लगवाकर उन्हें ऐसे बनवा दिये जिससे दिन जान पड़े।

पर नागदत्त ने यही उत्तर दिया कि रात कितनी है, यह मुझे मालूम है। पिताजी! आप तकलीफ न उठाएं। मैं तबतक भोजन न करूँगा, जबतक दिन अच्छी तरह न निकल जायेगा। मुझे प्राण देना मंजूर है, परन्तु व्रतभंग करना मंजूर नहीं। फलत: उसकी तकलीफ बढ़ती ही गई, परन्तु वह अपने विश्वास पर दृढ़ रहा।

जब उसने समझा कि अब मेरा जीना कठिन है, तकलीफ से छुटकारा मिलना मुश्किल है, तब उसने अपनी इच्छा और चित्तवृत्ति को सब ओर से रोककर जिन भगवान के स्मरण में लगाया। वह निराकुलता से कष्ट पर विजय प्राप्त करने लगा। वह शान्ति को अपनाने लगा। जैसे-जैसे उसका अन्तसमय निकट आता गया, वैसे ही वह बड़ी धीरता के साथ संसार के मायाजाल से मुक्त होने लगा। आखिर कुछ रात के रहते उसने अपनी जीवन लीला पूर्ण की।

पुण्य और धर्म के प्रभाव से वह सौधर्मस्वर्ग गया। वहाँ उसकी

आयु पाँच पल्य की हुई। उसने अवधिज्ञान से स्वर्ग प्राप्ति का कारण जाना। वहाँ से वह अपने बन्धुओं को समझाने के लिए आया। उसके उपदेश से उसकी स्त्री को बड़ा वैराग्य हुआ। वह भी तपस्विनी बनकर तपश्चर्या करने लगी। अन्तसमय ससमाधि मृत्यु प्राप्त कर वह भी सौधर्म स्वर्ग में गई। और उसी सूर्यप्रभ–भूतपूर्व नागदत्त–की देवी हुई।

कुमार! स्वर्ग से निकलकर तू तो जयंधर का पुत्र हुआ और वह देवी विजयंधर की पुत्री यह श्रीमती हुई है। नागकुमार को मुनि के उत्तर से बड़ा सन्तोष हुआ। उसे पंचमी व्रत पर बड़ी श्रद्धा हुई। उसने मुनिराज से पंचमी व्रत के करने की विधि पूछी। मुनि ने उसे इस तरह समझाया –

यह व्रत कार्तिक, फाल्गुन या आषाढ़ की सुदी पंचमी को किया जाता है। इसके पहले अर्थात् चतुर्थी के दिन स्नान के बाद भोजन किया जाये। वह भोजन माँगा हुआ न होना चाहिए। इसके बाद मुनि के पास जाकर मन–वचन–काय की शुद्धिपूर्वक व्रत ग्रहण करना चाहिए और उस दिन तथा उपवास के दिन को धर्मध्यान, शास्त्रस्वाध्याय आदि में शान्ति के साथ बिताना चाहिए।

उपवास के दिन एक बात यह भी आवश्यक है कि उपवास करनेवाला न स्नान करे, न तैल लगावे, न भूषण पहने, न पलंग पर सोये और न घर सम्बन्धी ही कोई काम करे। अर्थात् आत्मा को शान्त रखे। उसमें किसी कारण से विकार न होने दे। कषायों

को खूब मन्द करे। क्योंकि उपवास का मतलब ही यह है कि उसमें 'कषाय, विषय और आहार का त्याग किया जाये। केवल आहार के छोड़ने को तो आचार्यों ने लंघन कहा है।'

पारणा के दिन नित्य क्रियाएँ – पूजनादि करके पहले अपनी शक्ति के अनुसार पात्रों को दान देना चाहिए। पश्चात् अपने को आहार करना उचित है।

यह व्रत पाँच वर्ष और पाँच महीने तक किया जाता है। इसके बाद व्रत का उद्यापन करना चाहिए। और यदि उद्यापन के करने की शक्ति न हो व्रत दूना करना चाहिए। जो उद्यापन करना चाहें उन्हें नीचे लिखे अनुसार विधि करना चाहिए।

पाँच प्रतिमाएँ बनवाकर उनकी प्रतिष्ठा करवानी चाहिए। और पाँच घण्टा, पाँच ध्वजा, और पाँच पुस्तक जिन मन्दिर में देकर महाभिषेक कराना चाहिए। मुनियों के लिए पुस्तकें, आर्यिका के लिए वस्त्र, उपकरण आदि और दीन दु:खितों के लिए आहार औषधादि देना उचित है। इस प्रकार मुनिराज से उपवास और उसकी उद्यापन विधि सुनकर नागकुमार ने भी पंचमी व्रत ग्रहण किया। इसके बाद वह उन्हें नमस्कार कर अपने महल चला गया और अपनी प्रिया के साथ सुख से रहने लगा।

कुछ दिनों बाद नागकुमार की जन्मभूमि से मन्त्री नयंधर आया। नागकुमार से मिलकर उसे बड़ी खुशी हुई। वह नागकुमार से बोला – कुमार! महाराज को आपने जब से छोड़ा, तब से उनकी खबर तक भी न ली? वे आपके बिना बड़े व्याकुल हो

रहे हैं। उन्होंने मुझे आपके लिवाने को भेजा है। इसलिए अब आप विलम्ब न कर शीघ्र ही चलने की तैयारी करें।

कुमार अपने मामा के पास गया और उससे सब हाल कहकर अपनी प्रियाओं को साथ लिए हुए वह कनकपुर की ओर रवाना हुआ। रास्ते में वह अपनी सब प्रियाओं को तथा और जो वस्तुएँ उसे प्राप्त हुई थीं, वे सब भी साथ लेता आया। जब उसके माता-पिता को पुत्र के आने का हाल ज्ञात हुआ, तब उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे कुछ दूर तक पुत्र के लिवाने को उसके सामने गये।

नागकुमार भी उन्हें देखकर रास्ते में सवारी से उतर पड़ा। वह बड़ी जल्दी दौड़कर माता-पिता के पाँवों में गिर पड़ा। उन्होंने उठाकर उसे बड़े प्रेम से छाती से लगाया। चिर वियोग के बाद आज पुत्रप्रेम से माता की छाती ठण्डी हुई। उसकी आँखों से प्रेमाश्रु गिरने लगे। उसका गला भर आया। बड़ी कठिनता से उसने पुत्र को आशीष दी। इसके बाद बड़े उत्सव के साथ पुत्र का शहर में उन्होंने प्रवेश कराया।

प्रजा ने भी अपने युवराज का खूब आदर सत्कार किया। घर-घर खूब उत्सव मनाया गया। दीन अनाथों को दान दिया गया। सच है - वियोग के बाद सम्मिलन का जो सुख होता है, वह अपूर्व ही होता है।

विशाललोचना और उसका पुत्र श्रीधर अपने कर्त्तव्य पर शर्मिन्दा होकर पहले ही दीक्षित हो गये थे। सौत का डाह बड़ा बुरा होता है। नहीं तो असमय में उन्हें क्यों ऐसा करना पड़ता? संसार से विरक्त होना अच्छा है, परन्तु वैराग्य का उदय जब स्वयं

हृदय में हो तो। ऐसे मलिनता के कारणों से विरक्त होना उतना उत्तम नहीं कहा जा सकता।

जयंधर इस समय पूर्ण सुखी है। उनके पुत्र-पौत्र का अपूर्व सुख है। अब वे संसार छोड़ने के प्रयत्न में हैं। एक दिन की बात है कि जयंधर भोजन के बाद हाथ में दर्पण लिए देख रहे थे। अचानक उनकी नजर एक सफेद बाल पर पड़ी। देखकर उन्हें पूर्व की वैराग्य वासना ने उत्तेजित किया। अब एक घड़ी भर के लिए भी उन्हें घर पर रहना कठिन जान पड़ने लगा। उन्होंने उसी समय नागकुमार को बुलवाया और उसे राज्यभार सौंपकर वे बोले -

पुत्र! आजतक तुम युवराज गिने जाते थे, किन्तु अब से तुम धराधिपति कहे जाओगे। देखो, यह पदस्थ अभिमान करने का नहीं है, किसी को दु:ख देने का नहीं है। जो अपनी प्रजा है, वह जिस तरह सुखी रहे और अन्याय का कभी प्रचार न हो, उसी तरह तुम उस पर शासन करना। सत्य की रक्षा के लिए अपने कुटुम्बियों को भी दण्ड देना पड़े तो देना, परन्तु पवित्र सत्य की हत्या कभी मत करना। जिस काम को करो, उसे बहुत सोच-विचार और अपने राज्य के अनुभवियों की सच्ची सलाह से करना। स्वार्थ को कभी पास मत फटकने देना। विचारों को उदार बनाना, जो दु:खी हो, उसकी सहायता करना। इसके अतिरिक्त यह नीति सदा ध्यान में रखना कि -

अयं निज: परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

और अधिक मैं तुम्हें क्या समझाऊँ? तुम स्वयं बुद्धिमान हो। परन्तु मेरा जो कर्त्तव्य था, उसे मैंने पूरा किया। उस पर ध्यान देना या न देना तुम्हारे वश का काम है। मैं यह चाहता हूँ कि तुम अपने कुल की मान-मर्यादा को सदा के लिए चिरजीवित करने का प्रयत्न करोगे। वश, यही मेरा तुम्हें उपदेश है।

इसके बाद वे अपने राज्य के संचालकों को खूब समझा-बुझाकर वन के लिए रवाना हो गये। वे सीधे पिहिताश्रव मुनि के पास गये और उनसे उन्होंने दीक्षा लेकर तपश्चर्या करना आरम्भ की। उन्होंने थोड़े ही दिनों में ध्यान के बल से आत्मशक्ति को विशेष बढ़ा लिया। अन्त में कर्मों का नाशकर वे मोक्ष चले गये।

पतिवियोग से पृथ्वीदेवी को भी राज्य में रहना कठिन हो गया। वह भी एक आर्यिका द्वारा दीक्षित होकर तपश्चरण करने लगी और अन्त में ससमाधि शरीर परित्याग कर अच्युतस्वर्ग में देव हुई।

नागकुमार को अपने माता-पिता के वियोग से हुआ तो बड़ा ही दु:ख, परन्तु उसे इससे बड़ा सन्तोष हुआ कि माता-पिता का पुत्र के प्रति जो कर्त्तव्य होता है, उसे पूर्ण कर वे प्रवृजित हुए हैं।

नागकुमार को राज्यधिकार मिला। उसने सबका सम्मान किया। व्याल, महाव्याल, अछेद्य, अभेद्य, सहस्रभट आदि अपने पूर्ण शुभचिन्तक जितने मित्र थे, उनके लिए खूब धन दिया। किसी के लिए उसने गाँव दिया, किसी को जागीर दी। अपनी जितनी स्त्रियाँ थीं, उनके लिए भी उसने ग्राम आदि दिये। सब रानियों के

बीच में पट्टरानी का पद श्रीमती, धरणिसुन्दरी, गणिकासुन्दरी और त्रिभुवनसुन्दरी को मिला।

नागकुमार बड़े सुख-चैन से रहने लगा। वह धर्मक्रियाओं को नित्यप्रति बड़ी श्रद्धाभक्ति से करता था। सज्जन धर्मात्माओं का अत्यधिक सत्कार करता था। प्रजापालन में वह कभी असावधानी न करके न्याय का सदा साथ देता था। प्रजा उसके राज्य शासन से बड़ी प्रसन्न रहा करती थी।

नागकुमार बड़ा विनोदी था। वह कभी हाथियों और कभी घोड़ों पर चढ़कर उन्हें मनमाना घुमाता। कभी वह वनविहार के लिए जाता। कभी वह अपने मित्रों के साथ जललीला में समय बिताता, कभी वह गेंद खेलता कभी वह अच्छे-अच्छे विद्वानों को बुलाकर उनका शास्त्रार्थ सुनता, कभी वह कवियों की सुधाधारा वाणी का स्वाद लेता और कभी वह स्वयं भी कविता लिखता।

नागकुमार धर्मात्मा भी अच्छा था। उसके हृदय में बड़ी दया थी। किसी को भी यदि वह दु:खी देखता तो उसी समय उसके लिए सब तरह का प्रबन्ध करता। वह भगवान की पूजन करता। पात्रों को दान देता, जिनमन्दिर बनवाता, उनकी प्रतिष्ठा करवाता। अपनी राजधानी में विद्यालय, पाठशाला, पुस्तकालय, श्राविकाश्रम, अनाथालय, औषधालय आदि सर्वोपयोगी संस्थाएँ भी उसने खुलवा रखीं थीं। वह बहुत से असमर्थ विद्यार्थियों को अपने राज्य से छात्रवृत्ति देता। उसका यह लक्ष्य सदा रहा है कि उसकी प्रजा

विदुषी हो, धनी हो, धर्मात्मा हो, दयालु हो। इसके लिए कभी किसी बात की त्रुटि उसमें नहीं आने देता। दयालु राजा का प्रजा के प्रति जो कर्तव्य होता है नागकुमार उसे पूर्ण रीति से निवाहता था।

कुछ दिन आनन्द से बीतने पर उसे एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। पुत्र का शुभनाम देवकुमार रखा गया। वह भी छोटी-सी उम्र में अच्छा विद्वान हो गया।

बड़े-बड़े राजे-महाराजे नागकुमार की छत्रछाया में रहने लगे। उसके न्याय राज्य की चारों ओर खूब प्रतिष्ठा हो गई।

एक दिन नागकुमार अपने महल पर बैठा हुआ था कि उसे एक अत्यन्त सुन्दर बादलों का दृश्य दिख पड़ा। उसने उसका चित्र लेना चाहा, किन्तु इतने ही में देखते-देखते वह बादल का टुकड़ा छिन्न-भिन्न हो गया। उसकी विनाशशील दशा के देखने से उसके चित्त पर भी उसका गहरा असर पड़ा। उसने संसार की भी यही दशा समझकर पुत्र को बुलवाया और राज्य उसे सौंपकर आप व्यालादि मित्रों के साथ प्रवृजित हो गया। उसने कैलाशपर्वत पर जाकर खूब तपश्चर्या की, शान्ति के परीषह सहन किये। अन्त में वह कर्मों का नाश कर मोक्ष गया। व्याल, अछेद्य और अभेद्य भी मोक्ष गये। इनके अतिरिक्त सहस्रभट आदिक अपने-अपने परिणामों के अनुसार सौधर्म आदि स्वर्ग में गये।

नागकुमार की पूर्ण आयु एक हजार वर्ष की थी। उसमें सत्तर वर्ष वह कुमार रहा, आठ सौ वर्ष तक उसने राज्यशासन किया,

चौसठ वर्ष उसके छद्मस्थ अवस्था में बीते और छनसठ वर्ष वह केवलज्ञानी रहा।

नागकुमार के बाद उसकी स्त्रियाँ भी आर्यिका हो गईं और तपश्चण द्वारा अपने-अपने भावों के अनुसार उन्होंने भी स्वर्गादि सद्गति प्राप्त की।

गौतम भगवान के द्वारा उपदिष्ट नागकुमार का पावन चरित श्रेणिक ने सुना। उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। क्योंकि यह चरित सुख का देनेवाला और पुण्य का कारण है। इसके बाद वह गौतमस्वामी को नमस्कार कर अपनी राजधानी में वापिस लौट आया और आनन्द से रहने लगा।

***